संवादसेतु

मीडिया का आत्मावलोकन

अंक : 8 पृष्ठ : 18 मार्च 2012 नयी दिल्ली

- **जनता पास मीडिया फेल**
- **छवि की छाया में दम तोड़ता यथार्थ**

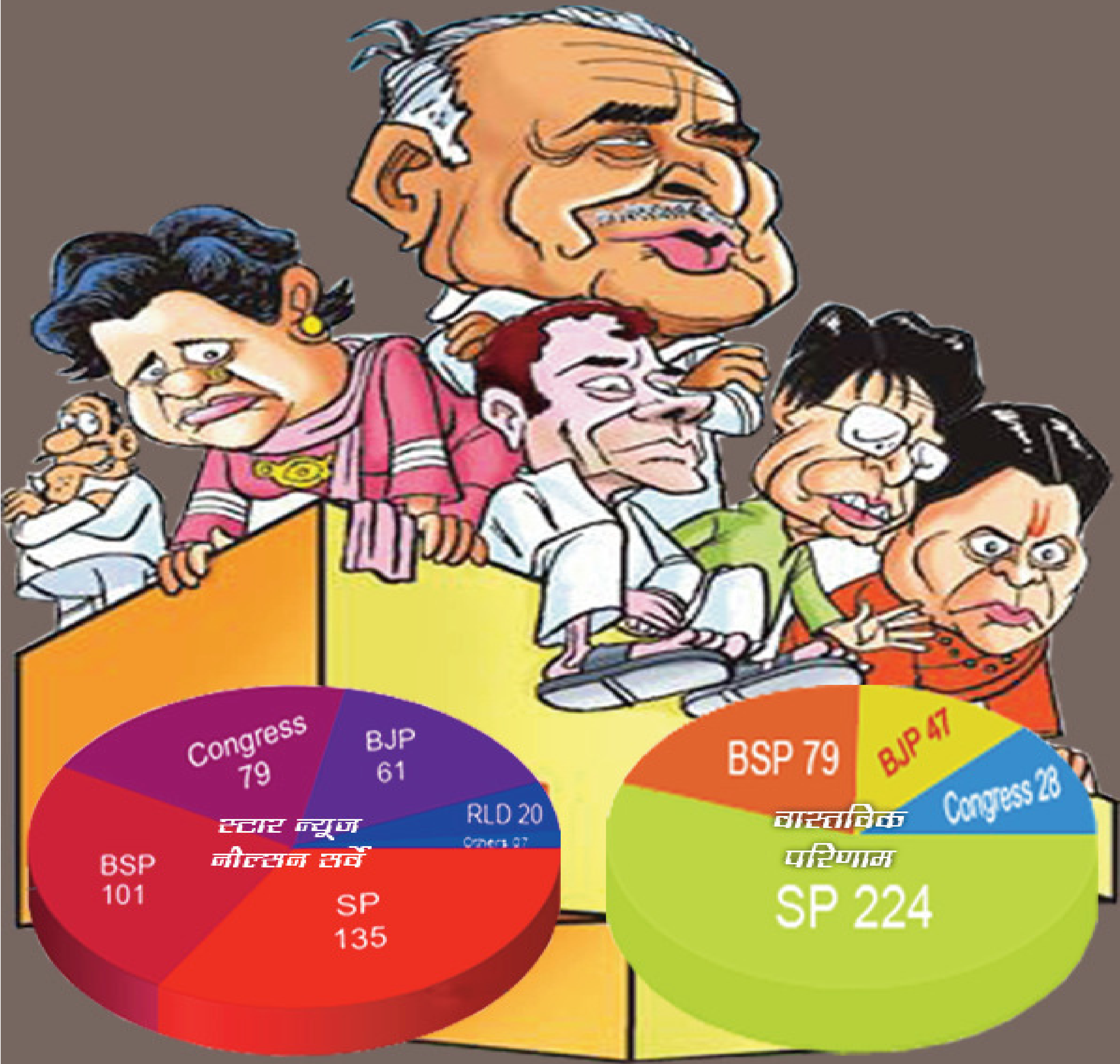

संवादसेतु

संपादक
आशुतोष

संपादक मंडल
अमल कुमार श्रीवास्तव
नेहा जैन
सूर्यप्रकाश

कार्यालय
प्रेरणा, सी–56/20,
सेक्टर–62, नोएडा

संपर्क:
0120-2400335
mail@samvadsetu.com
वेब : samvadsetu.com

अनुरोध

संवादसेतु की इस पहल पर आपकी टिप्पणी एवं सुझावों का स्वागत है। अपनी टिप्पणी एवं सुझाव कृपया उपरोक्त ई–मेल पर अवश्य भेजें।

'संवादसेतु' मीडिया सरोकारों से जुड़े पत्रकारों की रचनात्मक पहल है। 'संवादसेतु' अपने लेखकों तथा विषय की स्पष्टता के लिए इंटरनेट से ली गई सामग्री के रचनाकारों का भी आभार व्यक्त करता है। इसमें सभी पद अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय 2

आवरण कथा
जनता पास मीडिया फेल 3

न्यू मीडिया
किताब : पढ़ें ही नहीं सुनें भी 5

परिप्रेक्ष्य
छवि की छाया में दम तोड़ता यथार्थ 6

साक्षात्कार
बार–बार खुद को साबित करना पड़ता है– रजनी नागपाल 8

संस्मरण
सांस्कृतिक पत्रकारिता के प्रकाश स्तंभ – हनुमान प्रसाद पोद्दार 10

परिचर्चा
अधिक मतदान के पीछे किसकी भूमिका 12

शोध
जनसम्पर्क माध्यम एवं पर्यावरण जागरूकता : एक अध्ययन 13

स्मृति
बड़े करीब से उठ कर चला गया कोई 15

लेख
सच्चाई की कीमत तो चुकानी ही पड़ती है 17

मीडिया शब्दावली 18

पिछले कुछ वर्षों में चुनाव आयोग की कड़ाई ने झण्डे, बैनर, पोस्टर और माइक वालों का धंधा मंदा कर दिया है। प्रत्याशी चाह कर भी उनके माध्यमों का उपयोग एक सीमा से अधिक नहीं कर सकता। नतीजा यह होता है कि प्रत्याशी के पास मतदाता तक अपना पक्ष पहुंचाने का एकमात्र जरिया मीडिया बचता है। यहीं से पेड न्यूज का खेल शुरू होता है।

प्रत्याशियों की घोषणा होते ही पैसे के प्रवाह को अपनी जटाओं में समा लेने को आतुर अखबारों और चैनलों के मार्केटिंग विभाग वाले शिव की तरह डमरू बजाते उनके पास जा धमकते हैं। यदि वह शिव को पत्र–पुष्प से पूजन कर प्रसन्न कर लेता है तो फिर उसकी सारी कमियां, सारे अपराध मीडिया विष की तरह पी जाता है और उसकी महानता का अमृत मतदाताओं में बांटना शुरू कर देता है।

जब तक चुनाव प्रचार चलता है, उसकी अच्छाइयां और प्रतिद्वंदी की बुराइयों की चर्चा ही चलती रहती है। यदि दोनों, अथवा सभी प्रमुख प्रत्याशियों ने मीडिया की सेवाएं ले ली हों तो फिर सभी प्रत्याशियों की अच्छाई और सभी प्रत्याशियों की जीत की संभावना एक साथ, एक ही अखबार के अलग–अलग पृष्ठों पर पढ़ी जा सकती है। दागी प्रत्याशियों के चुने जाने की बात भी होती है, लेकिन चुनाव पूरा होने के बाद।

यहां अखबारों और स्थानीय चैनल तथा केबल टीवी वाले राष्ट्रीय चैनलों के मुकाबले अधिक सुविधाजनक स्थिति में रहते हैं। राष्ट्रीय चैनलों की समस्या है कि वे किसी एक विधानसभा को केन्द्रित करके कार्यक्रम प्रसारित नहीं कर सकते। राष्ट्रीय अखबार अपने स्थानीय संस्करणों के माध्यम से इस विकेन्द्रीकरण का पूरा फायदा उठाते हैं।

गत लोकसभा चुनावों के बाद पेड न्यूज का मुद्दा जोर–शोर से उठने के चलते इस बार मीडिया घरानों ने अधिक सावधानी बरती। परिणामस्वरूप प्रत्याशियों के साथ ब्लैकमेलिंग तो हुई लेकिन पिछली बार हुई डकैती से वे बच गये। बिना पैकेज खरीदे किसी प्रत्याशी को कवरेज तो इस बार भी नहीं मिला किन्तु संस्थान के लेटरहेड पर पत्र लिख कर पैसे की मांग जिस प्रकार पिछली बार सामने आयी थी, इस बार उतनी नंगई के साथ सामने नहीं आयी। कारण, कुछ तो चुनाव आयोग की कड़ाई और कुछ प्रत्याशियों की समझ विकसित होना भी है। इस बार प्रत्याशी शुरू से ही मीडिया का मद अपने अघोषित खर्च में जोड़ कर ही चल रहे थे लिखा–पढ़ी की जरूरत ही नहीं रही, इशारों–इशारों में ही बात बन गयी।

हाल ही में सम्पन्न विधानसभा चुनावों में विजयी एक प्रत्याशी के मीडिया मैनेजर से बात हुई तो उसने बताया कि शहर से छपने वाले सभी छोटे–बड़े अखबारों तथा केबल टीवी के अपने–अपने पैकेज थे। जिसका पैकेज नहीं लिया उसने हारने वाले प्रत्याशी को जीतता बताने में कोई कसर नहीं छोड़ी। यह जानना भी रोचक था कि एक के साथ एक फ्री और दो अखबारों अथवा एक अखबार और एक केबल टीवी के कॉम्बो पैकेज भी बाजार में उपलब्ध थे।

प्राप्त जानकारी के अनुसार चुनाव प्रक्रिया पूरी होने तक चुनाव आयोग के समक्ष पेड न्यूज संबंधी 626 शिकायतें दर्ज करायी गयी थीं। इनमें से 438 मामलों में आयोग ने संबंधित प्रत्याशियों को नोटिस जारी की। 223 प्रत्याशियों ने मीडिया को पैसे देकर खबर छपवाने के आरोप स्वीकार किये हैं तथा दी गयी राशि को अपने चुनाव खर्च में जोड़ने पर सहमति जतायी है। यह संख्या और बढ़ सकती है और स्वाभाविक है कि इससे कई गुना अधिक मामले प्रकाश में कभी नहीं आ सकेंगे।

जरूरत इस बात की है कि मीडिया से लोगों का पूरी तरह विश्वास उठ जाय, इससे पहले मीडिया के भीतर से ही विश्वास बहाली की पहल हो। लेकिन पहला पत्थर तो वही उछाल सकता है जिसने खुद पाप न किया हो। मीडिया में अभी भी ऐसे लोग मौजूद हैं जिन पर कोई दाग नहीं। मीडिया का दामन दागदार होने से बचाना असंभव नहीं है बशर्ते सिद्धांत के लिये पत्रकारिता करने वाले पत्रकार एक मंच पर जुटें तथा पेड न्यूज जैसी विकृति के विरुद्ध सीधी लड़ाई की घोषणा करें।

भवदीय
संपादक

पांच राज्यों में चुनाव रूपी लोकतंत्र के महापर्व में

जनता पास मीडिया फेल

देश के पांच राज्यों में चुनावों के रूप में लोकतंत्र के पर्व का समापन हो चुका है। चुनाव चूंकि लोकतंत्र का पर्व है इसलिए स्वाभाविक ही है कि इसमें लोकतंत्र के चौथे स्तंभ मीडिया की सक्रिय भागेदारी रहनी थी। मीडिया सक्रिय था भी। पहले भी सक्रिय रहा है, इस बार भी था और आगे भी सक्रिय रहेगा। परंतु मुख्य प्रश्न यह है कि चुनावों में मीडिया की वास्तविक भूमिका क्या है और क्या मीडिया ने इन चुनावों में अपनी उस भूमिका का ठीक से निर्वहन किया? क्या आज मीडिया चुनावों के दौरान जो कुछ कर रहा है, उससे उसे संतुष्ट होना चाहिए? सामान्यतः चुनाव और मीडिया की भूमिका की बात होती है तो आज आम आदमी के मन में दो ही चित्र उभरते हैं। पहला, चुनाव पूर्व सर्वेक्षण व चुनाव के बाद का एग्जिट पोल और दूसरा पेड न्यूज यानी कि पैसे लेकर किसी प्रत्याशी या दल विशेष के पक्ष में माहौल बनाना। तो क्या हम मान लें कि चुनावों में लोकतंत्र के चौथे स्तंभ की इतनी सी ही भूमिका है?

रवि शंकर

यह एक कड़वी सच्चाई है कि आज का मीडिया चुनाव पूर्व सर्वेक्षण और चुनाव के बाद एग्जिट पोल करके अपनी भूमिका की इतिश्री मानने लगा है। ज्यादा हुआ तो दागी प्रत्याशियों का थोड़ा बहुत विवरण दे दिया या फिर दलों की नीतियों की आलोचना कर दी। यह विवरण भी पिछले कुछ समय से काफी पक्षपातपूर्ण होने लगा था। जिसने जैसे पैसे दिए उसका उतना महिमागान। मीडिया के चुनाव सर्वेक्षणों और एक्जिट पोल पर काफी सवाल खड़े किए जाते रहे हैं। एग्जिट पोल सही निकलें या गलत इनके बारे में अधिकांश लोगों की राय एक सी ही है। एग्जिट पोल विश्वसनीय नहीं माने जाते। यह सच है कि कई बार इनके अनुमान सही निकले हैं, परंतु कई बार पूरी तरह गलत भी सिद्ध हुए हैं। एक्जिट पोल का हेतु साफ नहीं है, इनका तरीका विश्वसनीय नहीं है और इसके परिणाम तुक्कों की तरह काम करते हैं, लग गए तो तीर नहीं तो...। जनसत्ता में लंबे समय तक कार्यरत रहे लेखक–पत्रकार दयानंद पांडे कहते हैं, 'यह एक्जिट पोल तो लोकतंत्र ही नहीं जनता का भी घोर अपमान है। चूंकि इन चैनलों की जवाबदेही सिर्फ अपने मालिकों और व्यवसाय के ही प्रति होती है, टी.आर.पी. के प्रति होती है सो यह कुछ भी, कभी भी कह–कर देते हैं।' कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण और एग्जिट पोल राजनीतिक दलों और प्रत्याशियों के लिए तो उपयोगी हैं पर जनता के किसी काम का नहीं। इसलिए भले ही मीडिया के इस बार के चुनाव पूर्वानुमान और एग्जिट पोल के परिणाम सही सिद्ध हो गए हों, ये मीडिया की भूमिका की सार्थकता को सिद्ध नहीं करते।

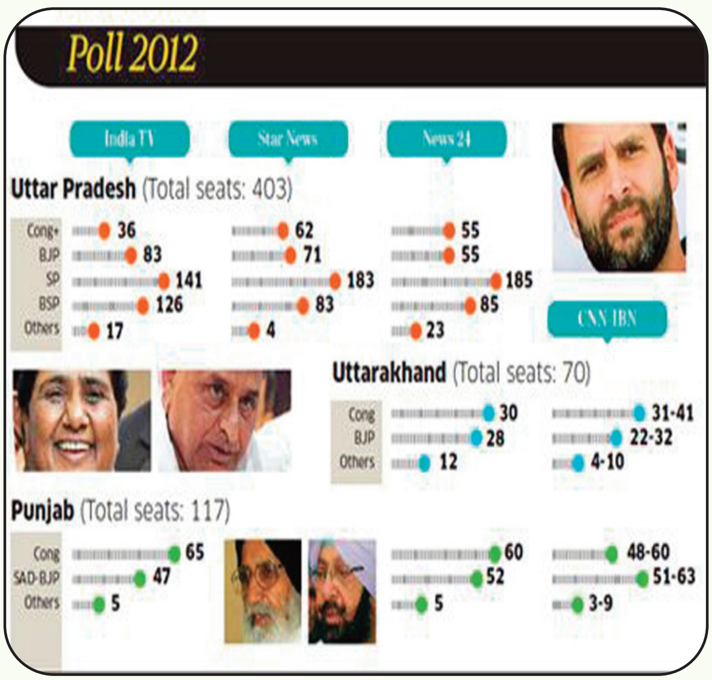

सामान्यतः चुनावों में दो पक्षों के अस्तित्व को सभी स्वीकार करते हैं, सत्ता पक्ष और विपक्ष। माना यह जाता है कि सत्ता पक्ष शासन का प्रतिनिधित्व करता है और विपक्ष जनता का। परंतु आज के राजनीतिक परिदृश्य में यह पूरी तरह सही नहीं है। प्रख्यात राजनीतिक चिंतक गोविंदाचार्य कहते हैं, 'यह देश की राजनीति का दुर्भाग्य है कि राजनीतिक दलों, चाहे वे सत्ता में हों या फिर विपक्ष में, उनमें चरित्र और सोच के स्तर पर कोई अंतर नहीं है। उनका देश से और देश की गरीब जनता से कोई लेना–देना नहीं है। वे सभी पूंजीवादी और विदेशोन्मुख व्यवस्था के पक्षधर हैं।' गोविंदाचार्य के इन विचारों से देश के लगभग सभी निष्पक्ष राजनीतिक विश्लेषक सहमत हैं। ऐसी स्थिति में लोकतंत्र के पर्व चुनावों में जनता का पक्ष कौन रखे, यह यक्ष प्रश्न प्रस्तुत होता है। सामान्यतः यह एक सर्वस्वीकृत तथ्य है कि मीडिया यानी कि पत्रकारिता जनता से जुड़ी होती है या फिर जुड़ी होनी चाहिए। इसलिए आज की परिस्थिति में यह और भी आवश्यक हो गया है कि मीडिया चुनावों में जनता का पक्ष प्रस्तुत करे। चुनावों में यही उसकी सही भूमिका है। परंतु क्या वह अपनी इस भूमिका का निर्वहन कर रहा है? मीडिया की आज की जो स्थिति है उससे तो यह चिंता पैदा हो जाती है कि उसे अपनी इस भूमिका का स्मरण भी है या नहीं। उसे यह याद भी है कि नहीं कि उसे चुनावों में जनता के निस्वार्थ प्रतिनिधि की भूमिका निभानी है?

पांच राज्यों में हुए चुनावों में मीडिया की भूमिका को उपरोक्त कसौटी पर कसें तो कुछ प्रमुख बातें ध्यान में आती हैं।

1. मीडिया ने अपना सारा ध्यान केवल और केवल उत्तर प्रदेश पर केंद्रित किया हुआ था। बाकी राज्यों पर काफी संक्षिप्त सी चर्चा हुई। यह ठीक है कि उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है और देश की राजनीतिक दिशा को यह काफी प्रभावित करता रहा है, परंतु पंजाब, उत्तराखंड, गोवा और मणिपुर को लगभग नजरअंदाज कर देना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता। मीडिया ने ऐसा क्यों किया? क्या इसका कारण राहुल गांधी का उत्तर प्रदेश में विशेष ध्यान देना है? या फिर लगभग सभी राजनीतिक दलों के राष्ट्रीय नेता सामान्यतः उत्तर प्रदेश में ही व्यस्त थे, इसलिए मीडिया भी यहीं केंद्रित रहा? कारण चाहे जो भी हों, ये कारण संतोषजनक नहीं कहे जा सकते। पंजाब में चुनावों के दौरान मिली बड़ी मात्रा में शराब का मुद्दा हो या फिर अमरिंदर सिंह पर लगे आरोप हों, या फिर शिरोमणि अकाली दल द्वारा सहजधारियों को अधिक प्रतिनिधित्व दिए जाने की बात हो, मीडिया ने इन्हें दिखाया तो पर सरसरी तौर पर ही। उत्तराखंड की भी थोड़ी बहुत ही चर्चा हुई, मणिपुर और गोवा तो मानो मीडिया को ठीक से याद भी नहीं थे। उनका केवल सर्वेक्षणों में ही उल्लेख हुआ, जबकि मणिपुर आतंकवाद की दृष्टि से एक संवेदनशील राज्य है और गोआ में सत्ता पलट हुआ। परंतु मीडिया उत्तर प्रदेश में हो रहे चुनाव पर ही केन्द्रित था।

2. हर बार की भांति इस बार भी मीडिया सर्वेक्षणों में ही व्यस्त रहा। मीडिया द्वारा दिखाए जाने वाले अधिकांश बहसों में भी 'कौन जीतेगा और किसको कितनी सीटें मिलेंगी' की ही चर्चा होती रही। राज्यों के जमीनी मुद्दों पर कहीं कोई बहस नहीं चलाई गई। मीडिया की सारी बहस नेताओं, दलों और उनके जातीय समीकरणों तक ही सीमित थी। आंकड़ों से खेलने और नित्य नए सर्वेक्षण प्रस्तुत करने को ही वह अपनी चुनावी बहादुरी समझता रहा। यह समझ पाना कठिन है कि सर्वेक्षणों का जनता के लिए क्या उपयोग है। राजनीतिक दलों के लिए तो इनका उपयोग है और वे स्वयं भी सर्वेक्षण करवाते ही रहते हैं। परंतु जाति व संप्रदाय के भेद से ऊपर उठ कर जनता के हित की चर्चा करने और दलगत भेद से परे ईमानदार व योग्य प्रत्याशियों को उभारने की मीडिया से जो अपेक्षा थी, वह सर्वेक्षणों, आंकड़ों और उनके विश्लेषणों में कहीं खो गई।

3. जनता के मुद्दों को लेकर कोई जागरूकता मीडिया में कहीं नहीं थी और न ही उसने ऐसे किसी मुद्दे को उठाने की कोई कोशिश भी की। बुंदेलखंड में छाई भुखमरी और वहां होती रही किसान–आत्महत्याओं के कारणों की कोई चर्चा कहीं नहीं थी। इसी प्रकार भूमि अधिग्रहण का मामला जिसके कारण भट्टा पारसौल में इतना बड़ा आंदोलन हुआ और कई जानें भी गईं, लेकिन इसकी कहीं कोई चर्चा नहीं की गई। भ्रष्टाचार पर थोड़ी बहुत चर्चा अवश्य हुई परंतु वहां भी मीडिया कोई विशेष काम नहीं कर पाया। पोंटी चड्ढा की खबर आए–गए की तरह दिखाई गई। कांग्रेस द्वारा आचार संहिता के उल्लंघन और चुनाव आयोग के घुटनेटेक आचरण पर भी मीडिया मुखर नहीं हो पाया। मीडिया सपा के राज्य में होती रही गुंडई पर न केवल पूरी तरह चुप रहा, बल्कि उसने यह भी दिखाने की कोशिश की कि अखिलेश यादव गुंडों को दूर रख रहे हैं, जोकि चुनावों के बाद सपा के सत्ता में आते ही गलत सिद्ध हो गया है। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि अधिकांश मामलों में मीडिया या तो राजनीतिक दलों के ही एजेंडों को आगे बढ़ाने का काम करता रहा या फिर उसने जमीनी मुद्दों पर पूरी उदासीनता बनाए रखी।

4. राजनीतिक दलों की ही भांति मीडिया भी जाति और संप्रदाय के आधार पर ही सारे चुनावी गणित बैठाता रहा। यह भी हैरत की बात ही है कि मीडिया के भी सभी चुनावी अनुमानों में जातीय व सांप्रदायिक समीकरण ही हावी थे। कहां, किस जाति के कितने मतदाता हैं और किस जाति के मत किनको मिलेंगे, इसके विश्लेषण में ही मीडिया अपनी सारी ऊर्जा व्यय करता रहा। उसने जनता को राजनीतिक दलों की स्वार्थपरता और चुनावी चतुराई से भिज्ञ कराने की कोई कोशिश नहीं की। उदाहरण के लिए जाटों को परंपरागत रूप से राष्ट्रीय लोकदल यानी कि चौधरी अजित सिंह का वोट बैंक माना जाता है, परंतु यह काम तो मीडिया का ही है कि वह अजित सिंह द्वारा जाटों के और उससे ऊपर स्वंय के हित में किए गए कामों का विश्लेषण करता। इसी प्रकार मुस्लिमों को एक वोट बैंक के रूप में प्रस्तुत करने की बजाय मुसलमानों की वास्तविक समस्याओं, विभिन्न राजनीतिक दलों के उस पर दृष्टिकोण व कार्यों और साथ ही बांग्लादेशी घुसपैठ पर बहस चलाता तो वह मुसलमानों के साथ–साथ देश के भी हित में होता। जाति के आधार पर वोट मांगने निकले नेताओं से यह पूछा जा सकता था कि उन्होंने अब तक उन जातियों के विकास के लिए क्या किया है। क्या मायावती के शासन में दलित जातियां ऊपर उठ पाईं, या फिर मुलायम सिंह यादव के कार्यकाल में यादवों का कितना विकास हुआ, या फिर कल्याण सिंह लोधों का कितना विकास कर पाए, या फिर राजनाथ सिंह ने राजपूतों का कितना कल्याण किया, ये प्रश्न उठने चाहिए थे पर मीडिया ही इन पर खामोश था तो और किसी से कोई आशा भी नहीं की जा सकती।

इन चुनावों के दौरान मीडिया केवल इस बात के लिए खुश होता रहा कि इस बार उस पर पेड न्यूज वाला आरोप नहीं लगा। हालांकि पोंटी चड्ढा की खबर दब जाना एक सवाल अवश्य खड़ा करता है परंतु पिछली बार की भांति इस बार मीडिया का दामन उतना दागदार नहीं हुआ। मीडिया ने इस बार इस पर भी काफी संतोष व्यक्त किया कि उसके अनुमान काफी हद तक सही निकले। परंतु मीडिया का काम केवल अनुमान लगाना भर नहीं है। मीडिया का काम है, जनता का पक्ष प्रस्तुत करना, जनता को जागरूक करना और जनता को सही रास्ता दिखाना। इनमें वह पूरी तरह विफल रहा या फिर यह कहना अधिक उचित होगा कि उसने इनमें से किसी भी काम को करने की कोशिश ही नहीं की। ■

किताब : पढ़ें ही नहीं सुनें भी

वंदना शर्मा

'न्यू मीडिया' ऑनलाइन पत्रकारिता से बहुत आगे निकल चुका है। अब यह समाचारों और पत्र–पत्रिकाओं तक ही सीमित नहीं रह गया है। न्यू मीडिया का कोई अंत नहीं है, यह संभवतः हमेशा ही 'न्यू मीडिया' के नाम से ही जाना जाएगा। जैसे समाचारों को पढ़ने का तरीका बदला है वैसे ही अब किताबों के पढ़ने का समय भी बदल चुका है। हर दिन एक एडवांस तकनीक के साथ नई–नई इलैक्ट्रॉनिक डिवाइस हमारी पहुंच में आ गई हैं। अब किताबों के शब्दों को पढ़ा ही नहीं बल्कि सुना भी जा सकता है।

जहां कुछ समय पहले तक एक क्लिक से किसी भी किताब को पढ़ा जा सकता था वहीं आज एक बड़ी स्क्रीन पर केवल एक टच की जरूरत रह गई है। आज किताबें अलमारियों से निकलकर इलैक्ट्रॉनिक डिवाइस में पहुंच चुकी हैं।

विश्व प्रसिद्ध ऑनलाइन पुस्तक पोर्टल 'अमेजन डॉट कॉम' द्वारा 2007 में पेश की गई लैपटॉप जैसी दिखने वाली डिवाइस 'काइन्डल' जैसी दर्जनों डिवाइस आज हमारे सामने मौजदू हैं। काइन्डल हथेली में आ जाने वाला एक उपकरण ई–बुक रीडर है और जिसमें ई–इंक टेक्नोलॉजी के जरिये टेक्स्ट छपी हुई सामग्री के तौर पर आ जाता है। काइन्डल ने अमेरिका के ई–बुक रीडर बाजार के 95 फीसदी पर कब्जा कर लिया है। हालांकि एप्पल ने इसे टक्कर दी है। इसके साथ ही कई अन्य कंपनियों ने अपने आईफोन निकाले हैं जो सस्ते दामों में लोगों तक अपनी पहुंच बना रहे हैं। 2010 में एप्पल ने अपना ई–बुक रीडर निकाला। उसके बाद अप्रैल में इसी साल आईफोन भी निकाला। सितंबर तक आते–आते इसकी 80 लाख डिवाइस बिक गईं।

वर्तमान समय में समयाभाव के कारण सभी कम–से–कम समय में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, इसलिए किताबों के इस नये रूप ई–बुक को लोगों ने पसंद किया है। ई–बुक का अर्थ है पुस्तक का डिजिटल रूप। ई–बुक के आने से लोगों में यह मिथक टूटने लगा है कि लोगों में पढ़ने की दिलचस्पी घटने लगी है। ई–बुक रीडरों की संख्या में लगातार इजाफा देख एप्पल जैसी बड़ी कंपनियों ने केवल किताबों को पढ़ने के मकसद से ही कई तरह के ई–बुक रीडर लांच किये हैं। जिनमें हजारों किताबें एक साथ समा सकती हैं। इन्हें विश्व के किसी भी कोने में किसी भी भाषा में पढ़ा जा सकता है।

आज ई–बुक रीडर से अधिक से अधिक लोग जुड़ने लगे हैं। दुनिया में यह एक बड़ा और तकनीकी बदलाव है। यह तय है कि आने वाले समय में इसमें और बेहतर बदलाव देखने को मिलेंगे। आज आम लोगों में और साथ ही युवाओं में पढ़ने की इच्छा जागी है। इन किताबों का सबसें बड़ा लाभ यह है कि ई–बुक ईको फ्रेंडली होती हैं। इनके बढ़ते प्रचलन से कागजों की मांग में कमी आई है। आजकल बहुत अधिक संख्या में किताबों के ई–संस्करण निकाले जाते हैं। बहुत–सी अच्छी तथा लोकप्रिय किताबों को उनके मूल यानी कागजी रूप से इंटरनेट संस्करण के रूप में उपलब्ध कराया गया है।

इन्हें डाउनलोड कर किसी इंटरनेट कनेक्शन की भी कोई आवश्यकता नहीं है। इसके लिये कोई खास मूल्य भी चुकाने की जरूरत नहीं होती।

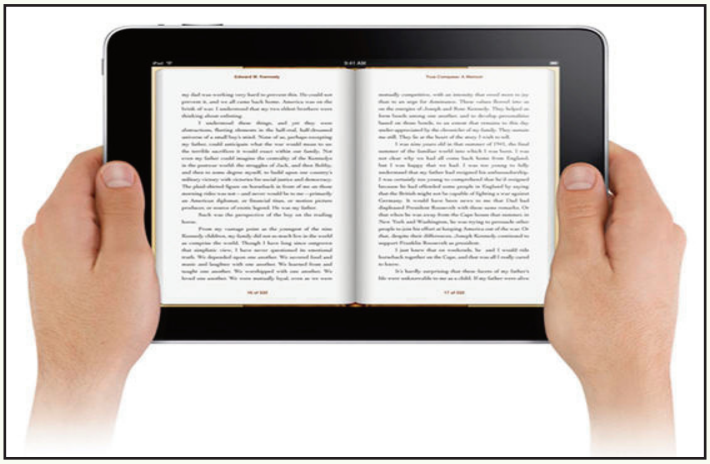

इससे एक लाभ यह भी है कि इन डिवाइसों में पुस्तक को पढ़ते समय हम अपनी आवश्यकतानुसार फोंट का आकार भी बढ़ा सकते हैं जबकि आम पुस्तकों में ऐसा करना असंभव है।

इन किताबों का ऑडियो संस्करण भी इस्तेमाल किया जा सकता है। जिन पुस्तकों के लिये मूल्य चुकाने की सुविधा होती है उन पर पाठक की सुविधा कि लिये पुस्तकों को खरीदने से पहले उसका कुछ हिस्सा लेकर पढ़ भी सकते हैं। आज हम एक साथ हजारों किताबों को अपनी हथेली में लेकर चल सकते हैं। आप उन्हें कहीं भी बैठ कर आराम से पढ़ने में सक्षम हैं।

आजकल किताबों के डिजिटल रूप के पाठक सबसे ज्यादा युवा ही हैं। ऐसा इसलिये है क्योंकि युवाओं का ही इतना बड़ा प्रतिशत है जो तकनीक के प्रयोग में सबसे अधिक सक्रिय है। इस स्थिति को देखते हुए देश–विदेश की अधिकतर यूनीवर्सिटीज और स्कूलों ने अपनी ऑनलाइन लाइब्रेरी का निर्माण किया है जिससे छात्रों को कोर्स से संबंधित किताबों को डाउनलोड कर पढ़ने में आसानी होती है। अब उन्हें किताबों के ढेर में एक–एक किताब को हाथ में लेकर नोट्स बनाने की जरूरत नहीं रह गई है।

हाल ही में, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने भी अपनी ऑनलाइन लाइब्रेरी का विमोचन किया है जिससे दूर–दराज के छात्रों को पढ़ाई करने में लाभ मिल रहा है। वहीं भारत के 10 हजार पब्लिक स्कूल ऐसे हैं जिनमें डिजिटल रूप में किताबें पढ़ाई जा रही हैं। आज एक छोटे से उपकरण पर कहीं भी किसी भी भाषा में अपनी इच्छानुसार कोई भी किताब पढ़ने से सभी के सामने एक बहुत बेहतर विकल्प आया है। पढ़ाई के क्षेत्र में यह सबसे अधिक कारगर साबित होता है। प्रेमचंद के गोदान और गबन से लेकर रस्किन बांड, चेतन भगत और सभी की किताबों को हम एक साथ अपनी हथेली में रखकर कहीं भी बिना किसी ज्यादा बोझ के लेकर आ–जा सकते हैं। विज्ञान, समाज, कथा–धर्म या अन्य कोई भी किताब हो, हमें इंटरनेट के माध्यम से आसानी से मिल जाती है।

इस डिजिटल युग में इस तरह ई–बुक के बढ़ते बाजार और मांग को देखते हुए यह संभावना नजर आ रही है कि आने वाला समय ई–बुक का ही है। भारत के इस डिजिटल बाजार में डिजिटल सॉफ्टवेयर इंडस्ट्री की मांग भी 28 फीसदी की दर से बढ़ रही है। यह पूरी संभावना है कि आगे इसका बाजार लगातार बढ़ेगा। ■

छवि की छाया में दम तोड़ता यथार्थ

आशुतोष

आजादी के बाद भारत के बारे में जो कल्पनाएं और प्रतीक गढ़े गये वे यूरोपीय दृष्टि की भारतीय प्रतिकृति मात्र थे। इंग्लैंड से डिग्रियां लेकर लौटे महापुरुष इस विश्वास के साथ भारतीय धरती पर उतरे थे कि यहां के पशुतुल्य दोपायों को सभ्य बनाने की जिम्मेदारी उनकी है। जब उनके हाथों में देश की सत्ता आयी तो यह विश्वास और गहरा गया कि अंग्रेजों के जाने के बाद यह बोझ अब उन्हें ही उठाना है।

संयोग कहें या दुर्योग, वही लोग वकील थे और वही राजनेता। वही आजादी के नायक, वही लेखक और पत्रकार भी। इसलिये नीतियां बनाने और उन्हें प्रचारित करने वाले लोगों के बीच समझ के स्तर पर कोई बड़ा भेद नहीं था। सभी इस पर सहमत थे कि अब भारत को आधुनिक बनाने का समय आ चुका है। महात्मा गांधी के हिन्द स्वराज में लिखे विचारों को बेहूदा बताया जा चुका था और देश में नयी रोशनी लाने के लिये प्रतिबद्ध नेतृत्व इन दकियानूसी बातों पर भरोसा करने को तैयार नहीं था।

विकास सर्वोपरि था और उसके पैमाने विदेशी। सब तरफ विकास की एक नयी उम्मीद जाग रही थी। रूस से पंचवर्षीय योजनाओं का मॉडल आयात हो रहा था तो यूरोप से महिला–मुक्ति का आन्दोलन। पंचशील को दफनाने के लिये चीन की कब्रिस्तान की खोज भी यहीं आ कर पूरी हुई। शायद भारत में डंपिग का विचार चीन को तभी आया होगा।

साहित्य लेखन में आधुनिकता और प्रगतिवाद, अंग्रेजी अखबारों में पेज थ्री (भले ही उसकी उपस्थिति तब करंजिया के ब्लिट्ज के आखिरी पृष्ठ पर छपने वाले चित्र से ही थी), रासायनिक खेती, बड़े बांध, सभी एक के बाद एक सामने आते गये। सभी के पीछे यूरोपीय देशों की तरह दमकता और उनकी ही कतार में खड़ा भारत बनाने की इच्छा थी।

आम आदमी को मनोरंजन के सहज उपलब्ध साधन के रूप में हिन्दी सिनेमा ने भी उस समय अपनी जगह बनायी। मुंबईया फिल्मों का राष्ट्रीय एकता में बड़ा योगदान है। उसने हिन्दी को भी सुदूर क्षेत्रों तक पहुंचाने का बड़ा काम किया। किन्तु विकास की चमक रुपहले परदे पर भी छा गयी। ग्रामीण परिवेश को दिखाने वाली सैकड़ों फिल्में बनी। ज्यादातर में सामंतवादी शोषण, अन्धविश्वास और कुरीतियों में डूबे तथा वर्गों और जातियों में बंटे गांव का चित्रण किया गया था। अनपढ़ और जाहिल लोगों के इन गांवों में जब शहर से कोई नौजवान आता था तभी परिवर्तन की बयार बहती थी। आज भी हिन्दी सिनेमा का यह प्रिय विषय है।

टेलीविजन के आगमन ने भारत में संचार क्रांति का सूत्रपात किया। शाम के समय कुछ देर आने वाले कार्यक्रम से लेकर चौबीस घंटे के

खबरिया चैनलों तक की विकास यात्रा में गांव के प्रति नजरिया नहीं बदला है। सूचना प्रसारण मंत्रालय के लिये तैयार किये गये कार्यक्रमों में गांव आज भी उतना ही पिछड़ा है। गांवों में आने वाले बदलाव को दिखाने के लिये जो प्रतीक भी चुने गये हैं वह बेहद नीरस और बोदे हैं। गांव की महिला को घर में शौचालय होने अथवा गर्भनिरोध का कोई उपाय अपना लेने पर जितना निहाल होते हुए दिखाया जाता है वह समस्या का अतिसरलीकरण जान पड़ता है।

मनोरंजन के नाम पर चैनलों में जो धारावाहिक परोसे जा रहे हैं वे तो और अधिक वीभत्स चित्रण करते हैं। उन्हें देख कर गांव की जो छवि बनती है उसके अनुसार गांव के लोग जाहिल और पिछड़े ही नहीं बल्कि क्रूर और हत्यारे भी हैं। किसी और दुनिया से आयी विलायती मेम जैसी नायिकाएं अगर जाकर किसी नवजात कन्या अथवा अजन्मी बेटी की रक्षा न करें तो शायद गांव में एक भी बेटी न जन्म ले सके। दर्शक सांस रोके प्रतीक्षा करता रहता है कि कोई अवतारी बाला प्रकट हो और कमरे में घिर आये तनाव से मुक्ति मिल सके।

गांव का यह चित्र और चरित्र हर बच्चे के मन में तभी बैठ जाता है जब प्राथमिक कक्षाओं में विलोम शब्द के पाठ में उसे रटाया जाता है कि जैसे दिन का उलटा रात या उजाले का विलोम अंधेरा है वैसे ही शहर का विलोम गांव है। बाल मन सहज तर्क के आधार पर विश्वास कर लेता है कि शहर दिन या उजाले का समानार्थी है तो गांव रात और अंधेरे का पर्यायवाची।

सूचना प्रसारण मंत्रालय के निर्देश पर तैयार होने वाले सरकारी विज्ञापनों में तमाम मंत्रालयों की उपलब्धियों का बखान होता है वहीं जागरूकता फैलाने की कोशिश की जाती है। दृश्य–श्रव्य मीडिया का इसके लिये जम कर उपयोग होता है। परिवार में रिश्तों के बीच संस्कारगत लिहाज को पाटने का अथक प्रयत्न इन दिनों मीडिया कर रहा है। वह प्रेरित करता है कि यौन संबंधों पर चर्चा में संकोच की जरूरत नहीं। महिला के स्वास्थ्य के संरक्षण के नाम पर गर्भनिरोध के उपायों का प्रचार तो होता ही है, गांव–गांव तक यह बताने वाले विज्ञापन मिल जायेंगे कि इन उपायों का लाभ लेकर एक से अधिक लोगों के साथ सुरक्षित यौन संबंध बनाये जा सकते हैं। टीवी युग में पांच साल के बच्चे भी 'जरा सी सावधानी, जीवन भर आसानी' गुनगुनाते हुए मिल जायेंगे, भले ही उन्हें इसका अर्थ न पता हो।

गंवई ढ़ंग से ढपली बजाते हुए विज्ञापन में गांव की सारी समस्याओं का हल सुझाया जाता है। 'जनहित में जारी' के संदेश के साथ यह दिखाते हुए मीडिया 'व्हाइट मेन्स बर्डन' भी ढोती नजर आती है।

विडंबना यह है कि आज स्वयं को नेशनल मीडिया मानने वाले समूहों में मुख्य भूमिका में भी अधिकांश वही लोग हैं जो स्वयं उन इलाकों से संबंध रखते हैं जो देश के सबसे पिछड़े इलाके माने जाते हैं। दीवाली से छठ के बीच मीडिया कार्यालयों में उपस्थिति घट जाती है, इन–पुट और आउट–पुट पर बैठे लोग खीझते रहते हैं कि सभी छुट्टी ले गये, चैनल कैसे चले। लेकिन बरसों बाद भी छठ पर अपने गांव चल देने वाले पत्रकार जब गांव की तस्वीर पर चर्चा करते हैं तो किसी अनजाने दबाव में यह बात जबान पर नहीं लाते कि ऐसा क्या है जो उन्हें बार–बार गांव की ओर खींचता है।

वस्तुतः यह कुछ वैसा ही दबाव है जो किसी किसान को फसल बेच कर बचे हुए पैसों से गाय खरीदने के बजाय टीवी खरीदने के लिये प्रेरित करता है। यद्यपि वह जानता है कि यदि गाय खरीदेगा तो बच्चों को दूध मिल सकेगा, पोषण मिल सकेगा। किन्तु वह खरीदता इसलिये नहीं क्योंकि टीवी या मोबाइल खरीदना आधुनिक होने की निशानी है और गाय खरीद कर वह खुद पर लगने वाली पिछड़ेपन की तोहमत से बचना चाहता है।

अपने कार्यक्रमों, यहां तक कि गांव के लिये बनाये जाने वाले कार्यक्रमों में भी मीडिया जिन प्रतीकों और चिन्हों का प्रयोग करता है वे न केवल शहर को गांव पर थोपते हैं बल्कि अपनी थाती को जिन्दा रखने के लिये लड़ रहे लोगों में कुंठा जगाते हैं। बीस साल पहले जिस पीढ़ी ने गांव में रह कर ही कुछ कर दिखाने का जज्बा दिखाया था, उनमें से ज्यादातर को आज मलाल है कि वे शहर क्यों नहीं चले गये। इस पश्चाताप के चलते वह अपने नौनिहाल को शहर भेजता है और उम्मीद करता है कि वह जब लौटेगा, मोटी कमाई और तमाम उपहारों के साथ लौटेगा, जैसा उसके किसी रिश्तेदार या उसके भी किसी और रिश्तेदार के लड़के के बारे में सुना है।

लेकिन दुर्भाग्य से अधिकांश सपने सच नहीं होते हैं। इस कटु सत्य का साक्षात्कार करने का साहस हो तो दिल्ली–मुंबई जैसे महानगरों के श्मशान में जाकर देखिये। अनेक ऐसी शवयात्राएं देखने को मिल जायेंगी जिसमें मरने वाले की उम्र महज तीस–चालीस साल के बीच होगी। वह किसी दुर्घटना में नहीं मरा होगा बल्कि आधा पेट भूखा रहते हुए हाड़–तोड़ मेहनत करने के कारण तिल–तिल कर मरा होगा। इसलिये, ताकि गांव में बसर कर रहे बूढ़े मां–बाप को दवा के लिये पैसा भेज सके। इसलिये कि साल भर बाद घर जाते समय जवान पत्नी के लिये कुछ उपहार ले जाये। इसलिये कि उसके बच्चे भी लाल–हरी टाई लगा कर स्कूल जायें और ए–बी–सी–डी पढ़ें।

यह शवयात्राएं भी महज औपचारिकता जैसी होती हैं। करोड़ में जनसंख्या होने पर भी इन शहरों में अजनबियों के लिये न कोई रोने वाला होता है और न कोई अर्थी में कंधे बदलने वाला। पांच–सात लोग मिल कर जैसे–तैसे अर्थी को ढ़ोते हुए लाते हैं और आग के हवाले कर देते हैं। कुछ जानकार उसकी मौत की खबर के बाद भी इसलिये नहीं पहुंचते हैं क्योंकि केवल शवयात्रा में जाने के लिये दिहाड़ी छोड़ने जैसा मंहगा शौक वह नहीं पाल सकते।

शहरों में जिस दिन और उजाले की तलाश में यह लोग आते हैं उस मरीचिका को इन्द्रधनुषी रंगों में रंग कर गांव तक पहुंचाने का काम मीडिया कर रहा है। सपने बेचना मीडिया का धंधा है। उसे वह करना ही है। इसे व्यवसायगत विशेषता माना जा सकता है। ठीक वैसे ही जैसे कोई कफन बेचने वाला अपने धंधे के फलने–फूलने की प्रार्थना ईश्वर से करे तो उसे क्रूर नहीं साबित किया जाना चाहिये। लेकिन सच बताना भी मीडिया की ही जिम्मेदारी है। इसलिये निगमबोध घाट पर धधकती चिता में जल रहे बेगुनाह पप्पू को मरीचिका तक खींच लाने के दोष से तो शायद मीडिया तकनीकी तौर पर बच सकता है लेकिन पप्पू जिंदगी की लड़ाई बीच में ही क्यों हार गया? इस सवाल पर चुप्पी साधने का पाप उसका पीछा करता रहेगा। ■

बार–बार खुद को साबित करना पड़ता है– रजनी नागपाल

पत्रकारिता जगत में महिला पत्रकारों की अपनी समस्याएं व संघर्ष हैं। अपना स्थान बनाने के लिए महिला पत्रकारों को बार–बार खुद को साबित करना पड़ता है। इन्हीं सब मुद्दों को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय नोएडा की अध्यापिका व इंडिया वुमन प्रेस कॉर्प्स की संस्थापक सदस्य रजनी नागपाल से बातचीत के कुछ अंश :

पत्रकारिता में आपका आगमन कैसे हुआ?

पत्रकारिता की शुरूआत मैंने 1987 में की। 1985 में दिल्ली विश्वविद्यालय से एमए (हिन्दी) के दौरान वैकल्पिक विषय के रूप में मैंने पत्रकारिता को चुना। उस समय पत्रकारिता की समझ मुझे नहीं थी। जब पत्रकारिता का इतिहास पढ़ा तो पता चला कि किस तरह पत्रकारों ने काम किया और मिशन भाव से जुड़े। इस प्रकार मुझे भी लगा कि समाज के लिए कुछ करना चाहिए। मैं जन्मजात पत्रकार तो नहीं थी, लेकिन बनाई गई पत्रकार थी। एमए के बाद मैंने भारतीय जनसंचार से कुछ शॉर्ट टर्म कोर्स किए व जयपुर विश्वविद्यालय से पत्रकारिता में डिप्लोमा किया। उस दौरान मैंने हिन्दुस्तान दैनिक, जनसत्ता, नवभारत टाइम्स अखबारों में लिखना शुरू कर दिया। लिखने की शुरूआत मैंने परिचर्चाओं से की। इसके बाद जनसत्ता में मैंने आवेदन किया। उस समय वहां प्रभाष जोशी जी थे और वह महिलाओं को कम रखते थे क्योंकि उनका व्यक्तिगत मत था कि लड़कियों की अपनी समस्याएं काम के आड़े आती है। इसी मत को तोड़ने के लिए मैंने वहां आवेदन किया और तीन बार टेस्ट के बाद मेरा इंटरव्यू हुआ। चूंकि मैं महिला थी, इसीलिए मुझे वहां रिपोर्टिंग पर न भेजकर डेस्क पर रखा गया। इसके बाद मैं खास खोज खबर अखबार, जनसत्ता के रविवारीय अंक में कार्य किया। वहां मैंने 14 साल कार्य किया और व्यक्तिगत तौर पर रिपोर्टिंग की। इसके साथ ही समाज से जुड़े रहने के लिए मैं अलग–अलग संस्थाओं से जुड़ी रही। दिल्ली पत्रकार संघ में मैंने अध्यक्ष, उपाध्यक्ष व महासचिव के तौर पर कार्य किया। मुझे महसूस हुआ कि धीरे–धीरे वहां ट्रेड यूनियनिज्म हावी हो रहा है जिसके कारण मैं उससे अलग हो गई। करीब 17 साल पहले इंडियन वूमेन प्रेस कॉर्प्स (आईडब्ल्यूपीसी) बना जिसकी मैं संस्थापक सदस्य हूं। वहां भी मैंने उपाध्यक्ष, सचिव व कोषाध्यक्ष के तौर पर कार्य किया और अभी भी हूं। इस तरह महिला पत्रकारों को अपनी समस्याएं व्यक्त करने का मंच मिला। 'ग्रामोदय' पत्रिका की मैं सहायक सम्पादक रही और उसके बाद माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता विश्वविद्यालय में मैंने बतौर अध्यापिका कार्य शुरू किया।

पत्रकारिता छोड़कर आपने अध्यापन के क्षेत्र को क्यों चुना?

अध्यापन के क्षेत्र में सोच समझकर आना नहीं हुआ। पत्रकारिता के दौरान मुझे कई विश्वविद्यालयों के कार्यक्रमों में बतौर वक्ता बुलाया जाता था। मुझे लगा कि शिक्षण के क्षेत्र में एक नया अनुभव मिलेगा और यहां आकर नई पीढ़ी को बदला जा सकता है।

पत्रकारिता के दौरान आपके कुछ रोचक अनुभव?

पत्रकारिता के दौरान एक बार मुझे राष्ट्रीय महिला अयोग से जुड़ने का मौका मिला। मैं वहां कुछ समय के लिए मीडिया शोध सलाहकार थी। एक बार एक दैनिक समाचार पत्र का एक रिपोर्टर आया और पूछने लगा कि क्या यह लोग कुछ अच्छा काम कर भी रहे हैं? मैंने उन्हें बताया कि मीडिया में महिलाओं की जो अशोभनीय प्रस्तुति है उसको लेकर चिट्ठियां आई, उस पर एक रिपोर्ट बनी है और आयोग ने बड़ा अच्छा काम किया है। इससे कुछ बदलाव आ सकता है और आप इस पर लिखिए। उसने कहा कि ''जो अच्छा हो रहा है वो छोड़िए, कुछ सनसनी वाला बताइए जैसे जो होना चाहिए था और महिला आयोग ने नहीं किया। ऐसा कुछ है क्या?'' मैंने कहा कि ऐसा कुछ नहीं है। काम तो बहुत अच्छा हो रहा है। तो वह कहने लगा कि फिर कोई खबर नहीं है। मीडिया में आज सकारात्मकता वाली खबरें कोई नहीं छाप रहा। एक और अच्छा अनुभव है। एक बार मैं एक कार्यक्रम के लिए जापान गई। वहां पर वह लोग जापानी में बोल रहे थे। मैंने कहा कि आपकी भाषा मुझे नहीं आती, आपने मुझे बुलाया है तो आप मेरे जवाब ठीक से दो, अंग्रेजी में दो। उन्होंने कहा कि हम अपनी मातृभाषा में ही बोलते है, आप भी अपनी मातृभाषा में बोलिए। फिर बाद में एक अनुवादक ने जवाब देना शुरू किया। वहां मुझे यह देखकर अच्छा लगा कि वह अपनी मातृभाषा बोलने में गर्व महसूस करते हैं जबकि भारत में लोगों को हिन्दी बोलने में शर्म आती है।

महिला सशक्तिकरण में मीडिया की क्या भूमिका है?

महिलाओं को सशक्त करने में महिला पत्रकारों की अहम भूमिका हो सकती है। महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर पुरूषों व महिलाओं द्वारा लिखने का नजरिया अलग–अलग होता है। पिछले दिनों आई एक सर्वे की रिपोर्ट में भी कहा गया था कि पत्रकारिता में अगर 76 प्रतिशत महिलाएं आ जाए तो देश में महिलाओं की समस्याएं काफी कम हो जाएंगी। मुझे लगता है कि महिलाओं की समस्याओं पर महिलाएं ज्यादा संवेदनशीलता के साथ लिख सकती हैं, किंतु वह इन मुद्दों पर कम लिखती हैं। पत्रकारिता में महिलाओं को रिपोर्टिंग के लिए आमतौर पर सॉफ्ट बीट दे दी जाती है जैसे हैल्थ, महिला, बच्चे आदि, लेकिन महिला विषय को अपने आप में अलग बीट माना ही नहीं गया। हम कहते हैं कि आधी दुनिया महिलाओं की है, लेकिन अखबारों में एक कॉलम तक महिलाओं के लिए नहीं है। महिला विषय को अलग से एक

बीट माना जाना चाहिए। इसके साथ ही महिला पत्रकार अगर सकारात्मकता के साथ महिलाओं से संबंधित मुद्दों पर लेखनी चलाती हैं तो बदलाव आ सकता है, केवल सनसनी के लिए नकारात्मकता को उभारना ठीक नहीं है।

महिला पत्रकार होने के नाते आपको क्या संघर्ष करना पड़ा?

महिला पत्रकार होने के नाते आपको बार–बार खुद को साबित करना पड़ता है कि एक पुरूष पत्रकार की तरह मैं भी अच्छा काम कर सकती हूं, मैं भी रिपोर्टिंग पर जा सकती हूं, अच्छी रिपोर्ट तैयार कर सकती हूं, किन्तु आपकी क्षमताओं को हमेशा संदेह की नजरों से ही देखा जाता है। चाहे घरेलू हो या कार्यस्थल का मोर्चा, सब जगह बार–बार कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके बाद ही आप किसी नतीजे पर पहुंचते हो, लेकिन इसके बावजूद भी आप उतना नहीं कर पाते जितना करना चाहते हो। जैसे शादी के पहले मैं लिखती रहती थी क्योंकि घर के लोग समर्थन करते थे। मेरी मम्मी को थोड़ी आपत्ति जरूर थी लेकिन मेरे पापा मेरा बहुत साथ देते थे। मेरा लेख अखबार में छपने पर वह बहुत खुश होते थे। शादी होते ही एकदम डाउनफॉल आ गया। मेरे पापा ने एक दिन मुझसे पूछा कि तुम्हारा लेख क्यों नहीं छप रहा, तो मैंने कहा कि थोड़ा खुद को अभी यहां सैटल कर लूं फिर लिखना शुरू करूंगी। कहने का तात्पर्य यह है कि एक महिला को कैसे–कैसे स्थितियों से पार पाना पड़ता है। खासकर मध्यम वर्ग की महिला पत्रकारिता में है तो संघर्ष और बढ़ जाता है।

मीडिया महिलाओं के लिए कितना सुरक्षित है?

मोटे तौर पर तो कोई असुरक्षा नहीं है लेकिन प्रबंधन के स्तर पर पुरूष वर्चस्व होने के कारण वह महिलाओं की समस्याओं को नजरअंदाज कर देते हैं। सुरक्षा की दृष्टि से तो कोई समस्या नहीं है।

अगर शोषण की बात करें तो?

शोषण तो महिलाओं का होता है। सेक्सुअल हरासमैंट तो जबरदस्त है। काम की एवज में महिलाओं का शोषण कई जगह होता है। प्रमोशन के लिए भी महिलाओं के सामने डिमांड रख दी जाती है।

पत्रकारिता में महिलाओं के लिए क्या संभावना है?

मुझे नहीं लगता है कि महिलाओं को रेगुलर जर्नलिज्म करने की कोई आवश्यकता है। घर बैठकर भी कार्य किया जा सकता है। आजकल मीडिया में अपार संभावनाएं है। मुझे लगता है कि महिलाओं को घर की जिम्मेदारी संभालनी चाहिए, वही बहुत बड़ा काम है। मैं अगर डिसीजन मेकिंग पॉवर में आ जाऊं तो महिला और पुरूषों के कामों को अलग–अलग कर दूं। वह एक–दूसरे के पूरक है। वह अपनी क्षमताओं के बूते पर कार्य करें, बराबरी की होड़ न करें।

क्या महिला पत्रकारों से संबंधित संगठन प्रभावी भूमिका निभा पा रहे हैं?

महिला पत्रकारों से जुड़े संगठनों ने अपने–अपने मंचों से आवाज उठाई है लेकिन उसका कोई प्रभावी नतीजा निकलकर सामने नहीं आया। महिला आयोग ने भी रिपोर्ट जारी की। महिला पत्रकारों के सम्मेलनों में भी कई सिफारिशें की गई, लेकिन इन सबका कोई ठोस नतीजा सामने नहीं आया। महिला पत्रकारों से जुड़े संगठनों का ध्येय केवल पत्रकारिता से जुड़ना एवं महिला पत्रकारों को अपने साथ जोड़ना रहता है।

क्या आज मीडिया में महिला पत्रकारों की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए लेकर कुछ दिशा–निर्देश जारी होने चाहिए?

दिशा–निर्देश बनते रहे हैं व जारी भी होते रहे हैं लेकिन लागू होने के स्तर पर उसे देखने वाला कोई नहीं है। कुछ ठोस दिशा–निर्देश जारी किए जाने की जरूरत है जैसे रात को गाड़ी छोड़ने जाते समय ड्राइवर ने शराब न पी हो और साथ में कोई साथी भी रहे। इसके अलावा मीडिया कार्यालयों में टॉयलेट की समस्या बहुत बड़ी है। सेक्सुअल हरासमेंट को रोकने के लिए एक अधिकारी प्रत्येक मीडिया हाउस में नियुक्त होना चाहिए।

मीडिया पाठ्यक्रम में आज किन सुधारों की आवश्यकता है?

मीडिया पाठ्यक्रम में व्यावहारिक ज्ञान ज्यादा होना चाहिए। आज किताबी ज्ञान ज्यादा दिया जाता है। अध्यापक सम्पादन तो बता रहे हैं कैसे होता है लेकिन विद्यार्थियों से सम्पादन का कार्य नहीं करवा रहें। पत्रकारिता में एमए के पाठ्यक्रम में 6 महीने का सैद्धान्तिक ज्ञान और बाकी डेढ़ साल का व्यावहारिक ज्ञान देना चाहिए, तभी वह छात्र आगे जाकर सफल होगा।

पत्रकारिता में आप आज क्या बदलाव देखती हैं?

पत्रकारिता में पेड न्यूज का मामला काफी दुखद है। एक प्रत्याशी को एक पेज पर जीता हुआ बता दिया जाता है तो दूसरे पेज पर उसके प्रतिद्वंद्वी को जिता दिया जाता है। पहले अखबार में कुछ छपता था तो लोग इसे अंतिम सच मान लेते थे। आज अखबार के कुछ छपने के बाद भी लोग 10 जगह से पुष्टि करते हैं। भाषा के मामले में भी काफी गिरावट आई है। अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग धड़ल्ले से हो रहा है। ऐसा नहीं है कि हिन्दी में वैकल्पिक शब्द मौजूद नहीं है लेकिन इसे कोई प्रयोग करना ही नहीं चाहता। हालांकि शीर्षक में आज नए–नए प्रयोग हो रहे हैं जो अच्छा बदलाव है। पहले खबरों को जल्दी पहुंचाना ही उद्देश्य होता था लेकिन आज प्रतिस्पर्धा के कारण खबरों को अच्छे ढंग से, अच्छे शीर्षक के साथ जल्द से जल्द पहुंचाया जाता है।

इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया में से कौन पत्रकारीय मूल्यों को बेहतर तरीके से निभा पा रहा है?

मेरी नजरों में प्रिंट मीडिया ही बेहतर है। प्रिंस के गड्ढे में गिरने वाली खबर सबको याद होगी। उस समय अन्य महत्वपूर्ण खबरें गौण हो गई। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में भले ही घटना प्रत्यक्ष दिखती है लेकिन विश्वसनीयता अभी भी प्रिंट मीडिया की ही है। अखबार पढ़े बिना लोगों को संतुष्टि नहीं मिलती।

मीडिया में आने वाली युवा महिला पत्रकारों को आप क्या संदेश देना चाहेंगी?

मीडिया में आज इतना एक्सपोजर बढ़ गया है कि पहचान बनाने के लिए रास्ते बहुत ज्यादा है। नए पत्रकारों को समाज के लिए कुछ करने की भावना लेकर पत्रकारिता में आना चाहिए, केवल एंकरिंग की दुनिया से प्रभावित होकर नहीं। महिला पत्रकारों को महिला से जुड़े मुद्दों को भी उठाना चाहिए।

प्रस्तुति– नेहा जैन

सांस्कृतिक पत्रकारिता के प्रकाश स्तंभ – हनुमान प्रसाद पोद्दार

सूर्यप्रकाश

भारत में पत्रकारिता का क्षेत्र राजनीति, अर्थव्यवस्था और वैश्विक उथल–पुथल की जानकारी देने तक ही सीमित नहीं है। भारत वह संस्कृति है जो विभिन्न आघातों और संक्रमण के बाद भी अपने मूल रूप में विद्यमान है। भारत की महान संस्कृति के यशोगान के लिए पत्रकारिता ने भी अपना योगदान दिया है। जिसे प्रायः सांस्कृतिक पत्रकारिता भी कहते हैं। संस्कृति का व्याख्यान करना और उसके आयामों को स्पष्ट करने का कार्य सांस्कृतिक पत्रकारिता के माध्यम से होता आया है। भारत में सांस्कृतिक पत्रकारिता की श्रृंखला में गीता प्रेस के संस्थापक सदस्य रहे हनुमान प्रसाद पोद्दार का नाम भी उल्लेखनीय है।

हनुमान प्रसाद पोद्दार का जन्म शनिवार, 17 दिसंबर, 1890 को राजस्थान के रतनगढ़ में हुआ था। उनके पिता का नाम भीमराज तथा माता का नाम रिखीबाई था। बाल्यावस्था में ही बालक हनुमान की माता रिखीबाई कभी न पूर्ण होने वाली कमी देकर चली गईं। उसके पश्चात दादी मां रामकौर देवी ने ही बालक का पालन–पोषण किया। दादी रामकौर देवी के सान्निध्य में बालक को भारतीय परंपरा और संस्कृति विरासत में मिली थीं, जिसकी उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से आजीवन सेवा की।

'कल्याण' मासिक पत्र के संपादक के रूप में पोद्दार जी का पत्रकारिता के क्षेत्र में विशेष स्थान है। 'कल्याण' के संपादक के रूप में हनुमान प्रसाद जी को विश्व भर के आध्यात्म प्रेमियों के बीच लोकप्रियता मिली। 'कल्याण' के संपादन के अलावा उनको गीता–प्रेस में दिए गए योगदान के लिए जाना जाता है। गीता–प्रेस के आजीवन ट्रस्टी रहे पोददार जी की गीता–प्रेस के संस्थापक जयदयाल गोयनका से प्रगाढ़ मित्रता थी। जयदयाल गोयनका को गीता में गहरी रूचि थी, वे प्रतिदिन गीता का अध्ययन किया करते थे और विभिन्न स्थानों में घूम–घूम कर गीता का प्रचार भी किया करते थे। गीता को आमजन तक पहुंचाने के लिए शुद्ध पाठवाली पुस्तक की आवश्यकता थी जो उस समय उपलब्ध नहीं थी। गोयनका जी ने गीता की व्याख्या कर कलकत्ता के वणिक प्रेस से पांच हजार प्रतियां छपवायीं। जिसमें मुद्रण से संबंधित विभिन्न गलतियां थीं, अतः उन्होंने धार्मिक–आध्यात्मिक प्रकाशन हेतु सन 1923 में गीता–प्रेस की स्थापना की। गीता–प्रेस की स्थापना यद्यपि जयदयाल गोयनका ने की, किंतु संपादन की जिम्मेदारी हनुमान प्रसाद पोद्दार के पास ही थी। वे गीता–प्रेस के ट्रस्टी भी थे।

गीता प्रेस के माध्यम से उन्होंने भारतीय संस्कृति की सेवा करते हुए भारत के समृद्ध ग्रंथों एवं परंपराओं की व्याख्या कर उनको जन–जन तक पहुंचाने का कार्य किया। भारतीय संस्कृति को लेकर किसी प्रकाशन ने यदि कोई पहल की है तो निर्विवाद रूप से गीता प्रेस उनमें से प्रथम है। हनुमान प्रसाद पोद्दार ने मुख्यतः आध्यात्मिक विषयों पर ही लिखा है, उन्होंने अपने लेखन की शुरूआत विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख एवं निबंधों के लेखन से की थी। उनके लेख एवं निबंधों का पुस्तक रूप में संकलन कर उनको श्रद्धांजलि देते हुए 'पावन स्मरण' किया गया है। उनके लेखों एवं निबंधों को निम्न चार श्रेणियों में दिया गया है–

1– आध्यात्मिक

2– राष्ट्रीय

3– नीतिमूलक

4– विधि (परामर्शमूलक, संस्मरणात्मक, सामाजिक)

उन्होंने निबंधों एवं लेखों के अलावा विभिन्न टीका साहित्य का भी सर्जन किया। हनुमान प्रसाद पोद्दार ने रामचरितमानस, विनयपत्रिका, दोहावली की विषद टीका प्रस्तुत की।

सन 1927 में गीता–प्रेस से ही 'कल्याण' का भी प्रकाशन होने लगा। 'कल्याण' के प्रकाशन की शुरूआत का भी बड़ा रोचक प्रसंग है। सन 1926 में मारवाड़ी अग्रवाल महासभा का अधिवेशन दिल्ली में होना था। उस अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष आत्माराम खेमका थे। वे शास्त्रज्ञ थे, किंतु हिंदी में व्याख्यान नहीं लिख सकते थे। सेठ जयदयाल गोयनका की प्रेरणा से स्वागत भाषण लिखने की जिम्मेदारी हनुमान प्रसाद पोद्दार को दी गई। हनुमान प्रसाद जी के लिखे स्वागत भाषण ने अधिवेशन में आए लोगों को मुग्ध कर दिया। इस स्वागत भाषण को सुनने के बाद सेठ जमुनालाल बजाज ने हनुमान प्रसाद जी को पत्र चलाने का प्रस्ताव दिया। यही प्रस्ताव आगे चलकर 'कल्याण' मासिक पत्र के रूप में सामने आया। 'कल्याण' का प्रथम अंक प्रकाशित हुआ जिसके मुख पृष्ठ पर 'वन्दौ चरन सरोज तुम्हारे' पद छपा था। संपादकीय पृष्ठ पर 'कल्याण' का उद्देश्य लिखित था जिसके शब्द इस प्रकार थे–

''कल्याण की आवश्यकता सबको है। जगत में ऐसा कौन मनुष्य है जो अपना कल्याण नहीं चाहता। उसी आवश्यकता का अनुभव कर आज यह 'कल्याण' भी प्रकट हो रहा है।''(हनुमान प्रसाद पोद्दार, डा. ब्रजलाल वर्मा)

'कल्याण' के लिए हनुमान जी ने जो नीति बनाई थी उसमें विज्ञापनों के लिए कोई स्थान नहीं था। 'कल्याण' की शुरूआत में पोद्दार गांधी जी से मिलने गए थे, उस मुलाकात में 'कल्याण' को लेकर जो सीख गांधी जी ने दी हनुमान प्रसाद पोद्दार ने उसका सदा पालन किया। 'कल्याण' की शुरूआत की बात सुनकर गांधी जी अत्यधिक हर्षित होते हुए बोले–

''कल्याण में दो नियमों का पालन करना। एक तो कोई बाहरी विज्ञापन नहीं देना दूसरे, पुस्तकों की समालोचना मत छापना''।

अपने इन निर्देशों को ठीक प्रकार से समझाते हुए गांधी जी ने कहा– ''तुम अपनी जान में पहले यह देखकर विज्ञापन लोगे कि वह किसी ऐसी चीज का न हो जो भद्दी हो और जिसमें जनता को धोखा देकर ठगने की बात हो। पर जब तुम्हारे पास विज्ञापन आने लगेंगे और लोग उनके लिए अधिक पैसे देने लगेंगे तब तुम्हारे विरोध करने पर भी...साथी लोग कहेंगे...देखिए इतन पैसा आता है क्यों न विज्ञापन स्वीकार कर लिया जाए?''। (पत्रकारिता के युग निर्माता– रजनीश कुमार चतुर्वेदी)

महात्मा गांधी की इस सीख का ही परिणाम था कि हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने विज्ञापनों के लिए अपने पत्र में कोई स्थान नहीं रखा था। 'कल्याण' ने बहुत कम समय में ही पत्रकारिता जगत में अपनी प्रतिष्ठा कायम कर ली थी। 'कल्याण' की लोकप्रियता को देखते हुए गीता–प्रेस के चिंतकों का यह विचार बना कि 'कल्याण' की रचनाओं को विश्व भर के आध्यात्म प्रेमियों तक पहुंचाया जाना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु जनवरी, 1934 में 'कल्याण' के अंग्रेजी संस्करण की शुरूआत 'कल्याण–कल्पतरू' नाम से की गई।

''कल्याण के संपादक और गीता–प्रेस के संचालक–प्रकाशक स्वर्गीय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने अपने प्रकाशनों के माध्यम से भारतीय साहित्य की विशेषकर धार्मिक साहित्य की मूल्यवान सेवा की है।''

सांस्कृतिक पत्रकारिता के स्तंभ हनुमान प्रसाद पोद्दार जी के पत्रकार जीवन में 'कल्याण' के बाद भी कई पड़ाव आने शेष थे। जो 'कल्याण–कल्पतरू' एवं 'महाभारत मासिक पत्रिका' के रूप में सामने आए। 'महाभारत मासिक पत्रिका' का प्रकाशन सन 1955 से लेकर सन 1966 तक अनवरत चलता रहा।

हनुमान प्रसाद पोद्दार जी की पत्रकारिता भारत की महान सनातन संस्कृति के यशोगान को समर्पित थी। उनकी लेखनी भारतीय संस्कृति के रक्षार्थ ही चला करती थी, जिसकी बानगी उनके एक लेख के इन शब्दों में मिलती है–

''भारतवर्ष ऋषि–मुनियों की भूमि और धर्म का क्षेत्र है। यहां गो–हत्या की कल्पना नहीं होनी चाहिए। यहां आज भारतीयों की स्वतंत्र सरकार होने पर भी भारतवासी अत्यंत दुखपूर्ण हृदय से प्रतिदिन 30 हजार गायों की नृशंस हत्या देख रहे हैं और सरकार से इस महापाप का परित्याग कर देने के लिए अनुरोध कर रहे हैं। धर्म प्राण भारत में गो–हत्या निवारण के लिए आंदोलन करना तथा साधु–महात्माओं को जेल जाना और प्राणोत्सर्ग करना पड़ रहा है। यह वास्तव में लज्जा और दुर्भाग्य की बात है''। (हनुमान प्रसाद पोद्दार, डा. ब्रजलाल वर्मा)

अपने संपूर्ण साहित्यिक एवं पत्रकारिता के जीवन में हनुमान प्रसाद पोद्दार अपने लेखन के माध्यम से भारतीय संस्कृति का सुव्याख्यान करते रहे। सन 1969 में हनुमान प्रसाद पोद्दार जी पेट की गंभीर बीमारी के शिकार हो गए, लंबी बीमारी के पश्चात 22 मार्च, सन 1971 को हनुमान प्रसाद पोद्दार जी ने अपने प्राण त्याग दिए। विश्व कल्याण की भावना को संचारित करने वाले यह महामानव इस दुनिया से विदा हो गये।

उनका जाना भारत के सांस्कृतिक लेखन की अपूर्णीय क्षति थी। हनुमान प्रसाद पोद्दार को श्रद्धांजलि देते हुए तत्कालीन नेपाल नरेश ने कहा–

''मैं तीन दशकों से भी अधिक समय से श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार को 'कल्याण' में प्रकाशित उनके लेखों के माध्यम से जानता हूं और मैं कह सकता हूं कि श्री पोद्दार का जीवन एक उत्थानकारी और महान उद्देश्य के प्रति पूर्ण समर्पण था।''

हनुमान प्रसाद पोद्दार ने भारत की सनातन हिन्दू संस्कृति की आजीवन सेवा की थी। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के शब्दों में–

''श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने हिन्दू–धर्म की स्मरणीय सेवाएं की हैं। यह सर्वथा उचित है कि उनकी सेवाओं को उपयुक्त ढंग से सम्मानित किया जाए''।

पोद्दार जी ने भारतीय संस्कृति एवं धार्मिक साहित्य की सेवा की। इसका ही सुपरिणाम है कि गीता–प्रेस ने उचित मूल्य एवं सरल भाषा में भारत के सामाजिक धार्मिक साहित्य को जन–जन तक पहुंचाने का कार्य किया है। उनके योगदान को रेखांकित करते हुए लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने कहा–

''कल्याण के संपादक और गीता–प्रेस के संचालक–प्रकाशक स्वर्गीय श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने अपने प्रकाशनों के माध्यम से भारतीय साहित्य की विशेषकर धार्मिक साहित्य की मूल्यवान सेवा की है। आजकल धर्मनिरपेक्षता के नाम पर धर्मग्रंथों की उपेक्षा करने का रिवाज सा अपने देश में चल पड़ा है। इस दृष्टि से यदि देखें तो गीताप्रेस ने अपने धर्म–ग्रंथों को वृहत पैमाने पर प्रचारित और प्रकाशित कर एक महत्वपूर्ण सेवा कार्य किया है और इसका मुख्य श्रेय हनुमान प्रसाद पोद्दार के साधनापूर्ण समर्पित जीवन एवं व्यक्तित्व को है। (हनुमान प्रसाद पोद्दार, डा. ब्रजलाल वर्मा)

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की यह बात अक्षरशः सत्य जान पड़ती है कि धर्मनिरपेक्षता के नाम पर विस्मृत कर दिए गए ग्रंथों के पुनरावलोकन के कार्य में पोद्दार जी का महत्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि पोद्दार जी हमारे बीच नहीं हैं किंतु, सांस्कृतिक पत्रकार के रूप में दिया गया उनका योगदान पत्रकारिता में उपजी सांस्कृतिक रिक्तता को पूर्ण करने की प्रेरणा देता है। ■

अधिक मतदान के पीछे किसकी भूमिका

हाल ही में 5 राज्यों के विधानसभा चुनावों में मतदान का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक रहा जिसके पीछे सबके अपने–अपने दावे हैं। कुछ लोगों का मानना है कि चुनाव आयोग की सक्रियता के कारण चुनाव प्रतिशत ज्यादा रहा, जबकि कुछ अन्ना आन्दोलन को इसका श्रेय दे रहे हैं। कई लोग कहते हैं कि सरकार से नाराजगी अधिक मतदान के रूप में सामने आई तो वहीं मीडिया इसके लिए खुद अपनी पीठ थपथपा रही है। आपके विचार में अधिक मतदान के पीछे किसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण रही? इस विषय पर हमने अपने पाठकों से चर्चा की जिसके उल्लेखनीय अंश यहां प्रस्तुत हैं–

राजनैतिक दल, मीडिया, चुनाव आयोग या आन्दोलन अब लोगों को जगाने में समर्थ नहीं है। हां, इन सब से हुई निराशा जरूर आम आदमी को थोड़ा सक्रिय करने लगी है. जनता अब अपने विचार को जीतते देखना चाहती है. अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जनता जग रही है और इसका श्रेय उपरोक्त में से कोई नहीं ले सकता। लोगों को बहुत लम्बे समय तक अब बंधक बना कर रखना असंभव है। जरुरत है सरकारे, राजनैतिक दल और इन सब के आगे पीछे घूम कर लाभ कमाने वाले मीडिया समूह, अब सच्चाई को जाने और अपनी कार्यशैली में आमूलचूल परिवर्तन करें।

मनोज त्यागी, पत्रकार

अधिक मतदान के पीछे मतदान प्रक्रिया में युवा मतदाताओं की ज्यादा भागेदारी है क्योंकि आज के युवा वर्ग में जहां शिक्षा और रोजगार को लेकर जागरुकता आयी है वहीं अब वह जाति और धर्म की बातों में कम ही रुचि लेता है। क्योंकि वह जान चुका है कि भाई 'भूखे भजन ना होय गोपाला'। राजनीतिक दल सत्ता की चाभी हथियाने के लिए भले ही जाति और धर्म का गणित लगाते हों लेकिन मंडल और कमंडल आंदोलन के बाद पैदा हुए युवाओं की सोच बिंदास और बदली हुई है। चुनाव आयोग के अनुसार 18 साल के 59 लाख से ज्यादा युवाओं ने पहली बार मतदान किया। यह वह वर्ग है जिसने भ्रष्टाचार के मुद्दे को ही महसूस किया है। उसने मायावती के तेवर देखें हैं। अन्ना जी के आंदोलन में नारेबाजी की है और राहुल गांधी और अखिलेश यादव उसके नेता हैं।

सुनील दूबे, हिन्दुस्थान समाचार

चुनावों में मतदान का प्रतिशत अपेक्षाकृत अधिक होना एक प्रक्रिया है पर सकारात्मक और सार्थक। इसके कारक चुनाव आयोग, अन्ना आन्दोलन, तत्कालीन सरकार से नाराजगी या मीडिया सोशल मीडिया हो सकते हैं पर किसी एक तंत्र की भूमिका को महत्वपूर्ण बताना मतदाताओं के साथ नाइंसाफी होगी। लोकतंत्र की सफलता मतदाताओं की हिस्सेदारी से तय होती है। अधिक मतदान प्रतिशत का मतलब है – जागरूक मतदाता, राजनीतिक गणित का गड़बड़ा जाना, सत्ता के अहं का टूटना। यह किसी एक तंत्र के बूते की बात नहीं, सम्मिलित प्रयास से ही संभव है। पांच राज्यों के आम आदमी ने अपने खास होने की दस्तक राजनीतिक हलकों में दे दी है। स्पष्ट है, जागरूक मतदाता की भूमिका किसी भी तंत्र से ऊपर है।

चंदन कुमार, जागरण जोश.कॉम

मुद्दे, मतदाता और मीडिया की भूमिका हर चुनावों में प्रासंगिक होती है पर विगत दिनों हुए 5 राज्यों के विधानसभा चुनावों में मतदाताओं ने जिस प्रकार बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया है वह निश्चित ही प्रशंसनीय है और धन्यवाद के हकदार सिर्फ मतदाता हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि चुनाव आयोग ने मतदाताओं के लिए स्वस्थ चुनावी माहौल तैयार किया, अन्ना ने लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया और मीडिया ने पल–पल की खबर देकर लोगों को जोड़े रखा वहीं तत्कालीन सरकारों के प्रति लोगों का प्यार व नाराजगी भी कुछ हद तक अधिक मतदान के कारणों में एक हो सकती है पर मेरे विचार में मतदान के बढ़े ग्राफ में पहली बार मतदान कर रहे युवाओं की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। आज का युवा जाति–धर्म से ऊपर उठकर विकास चाहता है ताकि वह अपना भविष्य संवार सके। देश के सबसे बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी को जिस प्रकार वोट मिले हैं वह इस बात के सबूत हैं कि उसे केवल सपा के परम्परागत वोट ही नहीं बल्कि सभी वर्गों का साथ मिला है, खासकर युवाओं का। साथ ही युवाओं ने अपने घर–परिवार के लोगों को भी मतदान के लिए प्रेरित किया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है बढ़े हुए मतदान ग्राफ के कारण चाहे जो हों पर यह स्वस्थ लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए सकारात्मक संकेत है।

संदीप कुमार राय, संपादक, वर्चुअस पब्लिकेशन्स

उत्तर प्रदेश की जनता ही सारी परिस्थितियों के लिए सही मायने में जिम्मेदार है। अगर बेहतर हो रहा है तो भी और कुछ नहीं हो रहा तो भी। पिछले कई वर्षों से सभी राजनीतिक पार्टी को उसने मौका दिया है, इस बार फिर से सपा पर दाव खेल रही है। हां, उसने ये जरुर जता दिया है कि अब वह एकजुट होकर अपने मतों का प्रयोग करेगी, तभी तो मतों का प्रतिशत इस कदर बढ़ा है। उसके इस कदम से अब सारी सिरदर्दी राजनीतिक पार्टियों की हो गयी है कि वह अब विकल्प चुने, कि काम करके सत्ता में रहना है या फिर कुछ ना करके सत्ता से बाहर। पहले यही असमंजस प्रदेश की जनता को खाये रहता था कि वह किसे चुने, इसी चक्कर में खिचड़ी वाली सरकार सत्ता में आती थी। आखिर राजनेताओं को राज से मतलब होता था तो वह जरुरत के आधार पर किसी के साथ ही जुड़ जाते थे। ऐसे में जनता ने अब सारे दांव अपने खाते में रख लिये हैं और विकल्पों का लालीपॉप नेताओं की ओर उछाल दिया है कि अगर सत्ता मे रहना है तो जनता के लिए सोचो। वरना अब हमें किसी पार्टी विशेष की जरुरत नहीं है। अब जनता एक हो गयी है और जो भी सत्ता में आयेगा, पूर्ण बहुमत में आयेगा। जहां तक बात अधिक मतदान के श्रेय की है तो यह ना तो मीडिया को जाता है और न ही अन्ना या किसी अन्य व्यक्ति विशेष को। अपने दुखों से परेशान और हताश जनता ने खुद ही अपने लिए रास्ता खोजा है और वह अब पूरी तरह से उसके लिए तैयार है। उसे अब किसी के समर्थन या बहकावे के लिए नहीं बल्कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना है। अब राजनीतिक दलों को ही अपनी नाक बचाने के लिए प्रयास करने की जरुरत है।

आकाश कुमार राय, हिन्दुस्थान समाचार

■

जनसम्पर्क माध्यम एवं पर्यावरण जागरूकता : एक अध्ययन

शोधार्थी– मनोज कुमार श्रीवास्तव, लखनऊ विश्वविद्यालय (2010)

समाज को जागरूक करने में मीडिया की हमेशा से ही अहम भूमिका रही है। इसके माध्यम से एक साथ बड़ी संख्या में लोगों तक अपनी बात पहुंचाई जा सकती है। पर्यावरण के बचाव को लेकर भी मीडिया जागरूक है और पर्यावरण से संबंधित अभियानों जैसे चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, जंगल संरक्षण, गंगा बचाओ अभियान, यमुना बचाओ अभियान और मिट्टी एवं जल संरक्षण आदि अभियानों पर मीडिया ने सराहनीय भूमिका निभाई है। संपादकीय, समाचारों, लेखों, साक्षात्कारों, डॉक्यूमेंटरी आदि के द्वारा मीडिया ने इन मुद्दों पर अपना ध्यान केंद्रित किया है। मीडिया की इस ताकत का ही नतीजा है कि वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने एक मीडिया कार्य योजना तैयार की है।

वर्तमान शोध में यमुना नदी को केन्द्रित करते हुए पर्यावरण को लेकर आम लोगों को जागरूक करने में मीडिया की भूमिका पर ध्यान दिया गया है।

औद्योगिकीकरण के बढ़ते प्रभाव के कारण यमुना का असीमित शोषण हुआ है जिसके चलते यह नदी गंदे और प्रदूषित नाले में तब्दील हो गई है। यमुना नदी का उद्गम यमुनोत्री ग्लेशियर से होता है जिसके बाद यह कई गांवों में बहती है। यमुना नदी अंतिम चरण में दिल्ली, मथुरा, आगरा और इटावा से होती हुई इलाहबाद में गंगा व सरस्वती नदी के साथ मिलकर संगम कहलाती है। कई औद्योगिक शहरों से गुजरने के कारण ही यह नदी प्रदूषण का शिकार होती है, लेकिन दिल्ली में यह सबसे ज्यादा प्रदूषित होती है। वजीराबाद और ओखला बांध के बीच बहाव के दौरान यह इस क्षेत्र के केवल 20 प्रतिशत हिस्से से ही निकलती है लेकिन नदी में कुल प्रदूषण का 80 प्रतिशत इसी क्षेत्र की देन है। राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय के अनुसार 57 मिलियन से भी ज्यादा लोग पीने के पानी के लिए यमुना नदी पर निर्भर है, जबकि प्रतिदिन 720 मिलियन लीटर अपशिष्ट जल यमुना नदी में प्रवाहित हो रहा है। यमुना नदी में दिल्ली से प्रतिदिन लगभग 2000 मिलियन लीटर नाले का पानी भी प्रवाहित किया जाता है।

सरकार ने यमुना नदी को बचाने के लिए अप्रैल 1993 में 'यमुना कार्य योजना' की शुरूआत की थी और इसे हरियाणा के 6, उत्तर प्रदेश के 8 शहरों व दिल्ली में लागू किया गया था। यमुना कार्य योजना के पहले चरण को पूरा किये जाने का लक्ष्य अप्रैल 2000 तक रखा गया था जिसका फरवरी 2003 तक विस्तार कर दिया गया। यमुना कार्य योजना–2 के तहत भारत सरकार ने जापान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग बैंक से 13.33 बिलियन येन की वित्तीय सहायता भी प्राप्त की है।

मीडिया ने यमुना कार्य योजना से संबंधित जानकारी समय–समय पर लोगों, सरकार तथा संबंधित एजेंसियों को उपलब्ध कराई है। आज यमुना के बिगड़ते हालात की जानकारी देने का श्रेय मीडिया माध्यमों को ही जाता है। प्रिंट एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के साथ–साथ न्यू मीडिया भी प्रदूषित यमुना और यमुना कार्य परियोजना का कवरेज कर रहा है।

शोध के दौरान पता चला कि 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में 7 जनवरी 2001 से लेकर 4 नवंबर 2007 तक यमुना नदी से संबंधित कुल 58 लेख प्रकाशित हुए हैं जबकि 'अमर उजाला' में 28 अप्रैल 1999 से 15 अगस्त 2007 तक कुल 36 लेख प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावा 'द हिंदू' और 'इंडियन एक्सप्रेस' में भी यमुना से संबंधित विभिन्न लेख प्रकाशित हुए हैं।

टेलीविजन भी जागरूकता फैलाने में पीछे नहीं है लेकिन यह कार्य केवल दूरदर्शन द्वारा ही बखूबी निभाया जा रहा है। पर्यावरणीय जागरूकता को लेकर रेडियो द्वारा भी सराहनीय कार्य किया जा रहा है। रेडियो पर यमुना को बचाने के लिए व्यापक अभियान चलाया जा रहा है। 'आओ दिल्ली संवारे' इसी से संबंधित कार्यक्रम है जिसके श्रोताओं की संख्या दिन–प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। विज्ञापनों के जरिए भी लोगों को जागरूक किया गया है। इसी प्रकार इंटरनेट पर भी विभिन्न लोगों एवं समुदायों ने यमुना को बचाने के लिए व्यापक अभियान छेड़ रखा है। 'यमुना कार्य योजना' की वेबसाइट को युवाओं द्वारा बखूबी देखा जा रहा है। वहीं राष्ट्रीय नदी संरक्षण निदेशालय (एनआरसीडी) द्वारा जारी किए गए पैम्फलेट से भी लोगों में यमुना नदी को लेकर जागरूकता आई है और पर्यावरण के प्रति उनके व्यवहार में सकारात्मक बदलाव आया है।

शोध के अनुसार यमुना नदी में प्रदूषण का कारण नाले की गंदगी, औद्योगिक कचरा, धोबीघाट, नदी किनारे शौच व मूर्ति विसर्जन आदि हैं। शोध में माना गया है कि यमुना नदी का पानी पीने योग्य नहीं है और इसके किनारे पर उगने वाली सब्जियां स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित नहीं है।

यमुना नदी को प्रदूषण से बचाने के लिए शोधार्थी ने कुछ सुझाव भी दिए हैं।

–दिल्लीवासियों को पानी में फैले प्रदूषण और हानिकारक तत्वों के विषय में जानकारी दी जाए। इसके साथ ही यमुना के पानी से त्वचा एवं पेट संबंधी रोगों के बारे में भी जागरूक करने की आवश्यकता है।

–दिल्लीवासियों को यमुना किनारे रहने वाले जानवरों से दूध व मांस के सेवन व वहां उगने वाली सब्जियों से होने वाले रोगों के बारे में जागरूक करना चाहिए।

–दिल्लीवासियों को प्रेरित किया जाए कि वह घरेलू कचरे को अलग करके उसका उपयुक्त प्रणाली के तहत निपटान करें। दिल्लीवासियों को प्राकृतिक तरीकों के प्रयोग से बने पैकिंग वाले उत्पाद लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए जिससे घरेलू अपशिष्ट हानिकारक न हो।

–लोगों को अस्थि विसर्जन के लिए यमुना से हटकर जमीन में गाढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। यह काम धार्मिक गुरूओं

द्वारा बखूबी किया जा सकता है। इसके अलावा वह मूर्ति विसर्जन नदी में करने के बजाए गड्ढ़ों और घाटियों में करने के लिए भी प्रोत्साहित कर सकते हैं। इसी प्रकार मौलवी, इमाम एवं अन्य धार्मिक गुरू बूचड़खानों से होने वाले प्रदूषण को रोक सकते हैं।

–लोगों को धोबी घाट से होने वाली गंदगी से जागरूक किए जाने की भी जरूरत है।

–नागरिकों को सरकार द्वारा चलाए जा रहे नदी प्रदूषण नियंत्रण कार्यक्रमों के बारे में भी समय–समय पर जानकारी देते रहना चाहिए।

–मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों और आम लोगों को सार्वजनिक शौचालयों का प्रयोग करने के लिए जागरूक करना चाहिए।

–दिल्लीवासियों व पर्यटकों को यमुना में कचरा न फेंककर कूड़ेदानों में कचरा फेंकने के लिए जागरूक करना चाहिए। इसके लिए गैर सरक. ारी संगठनों, एनसीसी, एनएसएस जैसी संस्थाओं द्वारा यमुना नदी को प्रदूषण से बचाने के लिए जागरूकता अभियान चलाया जाना चाहिए।

–मीडिया को तर्कसंगत एवं भावनात्मक रूप से दिल्ली के लोगों को यमुना बचाने के लिए प्रभावित करना चाहिए।

–विभिन्न समुदायों को जागरूक करने के लिए मीडिया के परंपरागत माध्यमों जैसे कठपुतली, नौटंकी, जादूगरी व संगीत और आधुनिक माध्यमों जैसे नुक्कड़ नाटक, छपित सामग्री, वीडियो क्लिपिंग आदि का प्रयोग करना चाहिए।

–लोगों के बीच प्रख्यात चैनलों, समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो और सिनेमा घरों में व्यापक अभियान चलाया जाना चाहिए। इसके लिए जनसम्पर्क एजेंसियों की मदद ली जा सकती है।

–मीडिया को यमुना नदी के संरक्षण के लिए न केवल दशहरा, गणेश चतुर्थी, गंगा स्नान और छठ पूजा पर बल्कि निरंतर जागरूक करते रहना चाहिए।

–पोलियो अभियान की ही तरह यमुना कार्य योजना के तहत यमुना नदी को बचाने के लिए एक व्यापक अभियान चलाया जाना चाहिए।

उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर यमुना को प्रदूषण रहित बनाने के की दिशा में व्यापक कदम उठाया जाना बहुत जरूरी है। ब्रांड एंबेस्डर, टीवी सीरियलों, विश्वविद्यालयों में संगीत कार्यक्रमों के जरिए यमुना को बचाने के प्रति जागरूक किया जा सकता है। साथ ही यमुना में फैली गंदगी को साफ करने के लिए सरकार को गतिशील होना चाहिए। ■

प्रेरणा में पत्रकारों का होली मिलन समारोह

गत 3 मार्च 2012 को प्रेरणा 'भारत केन्द्रित अध्ययन एवं मीडिया नैपुण्य संस्थान' में पत्रकारों का होली मिलन समारोह आयोजित किया गया। इसमें अलग–अलग संस्थानों में कार्यरत कई वरिष्ठ पत्रकारों के अलावा बड़ी संख्या में युवा पत्रकार भी शामिल हुए। इस समारोह की शुरुआत सांस्कृतिक कार्यक्रम से हुई जिसमें लोक गीत, कविताओं आदि का आनंद पत्रकारों ने उठाया। कार्यक्रम में कुछ खास तस्वीरों, कार्टूनों, व्यंग्यों की वीडियो क्लिप भी दिखाई गयी। उसके बाद सभी पत्रकारों ने एकदूसरे को गुलाल लगाकर होली की शुभकामनाएं दीं।

बड़े करीब से उठ कर चला गया कोई

स्वर्गीय रामनारायण त्रिपाठी 'पर्यटक' के साथ अपने बीते पत्रकारीय जीवन की याद कर रहे हैं विजय कुमार

जो इस दुनिया में आया है, वह जाएगा अवश्य। यह सृष्टि का अटल सिद्धान्त है। जो भी मित्र, परिचित या निकट सम्बन्धी सदा के लिए जाता है, उसके जाने से दुख होता ही है पर कुछ लोगों का जाना हृदय पर अमिट घाव छोड़ जाता है। रामनारायण जी के बारे में तो यह बात सौ प्रतिशत सच है।

लखनऊ छोड़े लगभग तीन साल हो गये पर आज भी वे दिन याद आते हैं, जब हम दोनों श्रद्धेय अभय जी के सम्पादकीय सान्निध्य में एक ही कमरे में बैठते थे। दिन में तीन बजे के लगभग, चाय पीते हुए, हर विषय पर हम तीनों लोग खुलकर विचार करते थे। मतभेद होते थे पर मनभेद नहीं। इसलिए तीनों ने मिलकर जब, जो भी योजना बनाई, उससे राष्ट्रधर्म पत्रिका के कलेवर, विषय–वस्तु और प्रचार–प्रसार को नये आयाम प्राप्त हुए।

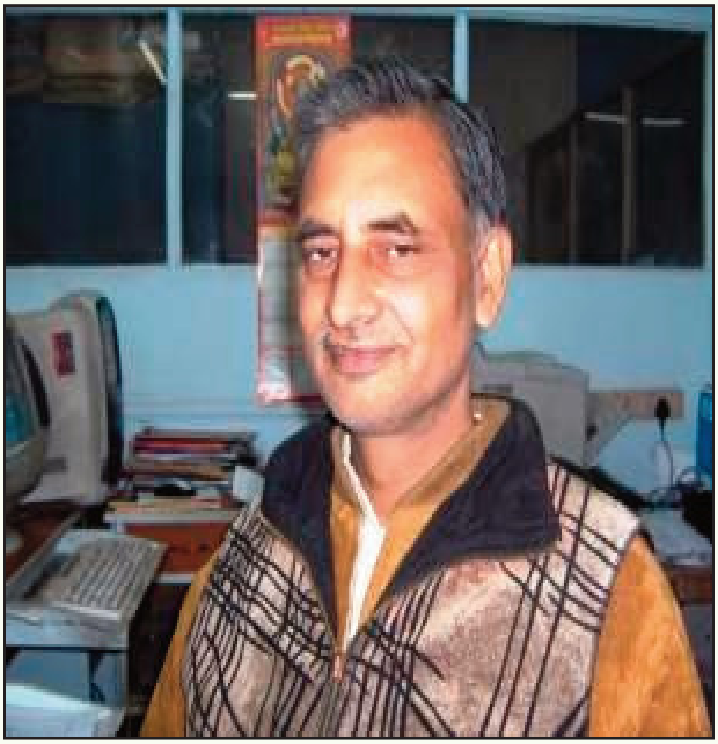

राष्ट्रधर्म में कहानी व व्यंग्य की वार्षिक अखिल भारतीय प्रतियोगिता तथा राष्ट्रधर्म हिन्दी सेवा सम्मान, राष्ट्रधर्म गौरव पुरस्कार, भानुप्रताप शुक्ल स्मृति राष्ट्रधर्म सम्मान आदि उनके बलबूते पर ही चलते थे। वे इन सबका ठीक हिसाब रखते हुए लगातार पत्र–व्यवहार करते रहते थे। इससे इन प्रतियोगिताओं को भरपूर प्रतिष्ठा और ख्याति मिली। पुरस्कार वितरण समारोह में आने वाले लेखकों के परिवार के सदस्य की तरह चिन्ता करना तथा वापस जाने के बाद भी उनसे लगातार सम्पर्क बनाये रखना उनके स्वभाव का अंग था।

घर–परिवार में समस्याएं तो सबके ही साथ होती हैं। पर्यटक जी भी इसके अपवाद नहीं थे पर उन घरेलू समस्याओं के कारण कभी राष्ट्रधर्म का काम प्रभावित हुआ हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। वे कई बार अस्वस्थ हुए पर पत्रिका सम्बन्धी जो काम उन पर थे, वे सदा समय से पूरे होते थे। यद्यपि जब वे देखते थे कि इसके बाद भी बार–बार, लगातार, पत्रिका देर से छप रही है, उसकी कटिंग, बाइंडिंग या छपाई ठीक नहीं हुई है, लेखकीय प्रतियां और उनके मानदेय समय से नहीं गये हैं, तो वे परेशान हो जाते थे।

एक जिम्मेदार व्यक्ति होने के नाते वे राष्ट्रधर्म को अन्तर्मन की गहराइयों से अपना समझते थे। इसलिए संस्थान में होने वाली हर अव्यवस्था या गड़बड़ी से उनके दिल पर गहरी चोट लगती थी। हानि–लाभ की चिन्ता किये बिना कुछ बातें वे सार्वजनिक रूप से कह देते थे और कुछ को सम्पादकीय कक्ष में। इसीलिए अस्पताल के बिस्तर पर पड़े हुए जब कभी वे अचेतन स्थिति में होते थे, तब भी राष्ट्रधर्म के बारे में ही बोलते रहते थे। राष्ट्रधर्म पत्रिका उनके मन ही नहीं, प्राणों में बस गयी थी।

पत्रिका की साज–सज्जा, लेख, कहानी, कविता, अन्य स्तम्भ आदि के साथ ही विज्ञापनों का समायोजन, यह उनके ही बस की बात थी। विशेषांक के समय विज्ञापन प्रायः देर से आते थे। ऐसे में पृष्ठों का संयोजन बार–बार बदलना पड़ता था। कई बार तो पूरी 'डमी' ही बदल जाती थी। इस सबमें कितनी मानसिक उलझन होती है, यह भुक्तभोगी ही जान सकता है पर वे कार्यालय का समय समाप्त होने के बाद भी भूख–प्यास की चिन्ता किये बिना शान्त भाव से इस कसरत में लगे रहते थे।

रामनारायण जी काव्य प्रतिभा के धनी तो थे ही। यद्यपि काम की व्यस्तता के कारण बहुत अधिक लेखन वे नहीं कर पाये पर जितना भी वे लिखते थे, वह छन्दबद्ध और व्याकरण की कसौटी पर परिपूर्ण होता था। मैं जब कभी उन्हें कुर्सी पर आंख बन्द किये, सिर टिकाये, हाथ में कलम–कागज लिये देखता था, तो ध्यान में आ जाता था कि कोई नयी कविता जन्म ले रही है। उनकी यत्र–तत्र बिखरी रचनाएं पुस्तक रूप में अब प्रकाशित हो सकें, इस बारे में प्रयास होना चाहिए। यह उनकी स्मृति में एक अच्छा उपहार होगा।

अपनी कविता तथा लेख आदि में वे अच्छी हिन्दी का प्रयोग करते थे। एक बार आकाशवाणी लखनऊ से बच्चों के कार्यक्रम में एक कविता प्रसारित हुई – अ आ इ ई वैरी बैड, ए बी सी डी वैरी गुड। इसकी जानकारी मिलने पर वे आक्रोशित हो उठे। उन्होंने हिन्दी प्रेमी युवाओं के साथ आकाशवाणी भवन पर जाकर विरोध प्रदर्शन किया और वहां के अधिकारियों को ज्ञापन दिया। कार्यक्रम के संयोजक ने खेद व्यक्त करते हुए कहा कि यह हास्य कविता थी पर इससे वे संतुष्ट नहीं हुए। इसके कुछ ही दिन बाद उ.प्र. हिन्दी संस्थान के पुरस्कार वितरण का कार्यक्रम था। वहां मुख्यमंत्री श्री मुलायम सिंह मुख्य अतिथि थे। पर्यटक जी ने अद्भुत साहस का परिचय देते हुए मुख्यमंत्री के आगमन से पूर्व मंच पर जाकर सभी लोगों को इसके विरोध में ज्ञापन दिये।

संगठन की कला के बारे में बोलना और लिखना तो आसान है पर धरातल पर संगठन खड़ा करना बहुत कठिन है। इसमें कितना समय, श्रम और जेब का धन लगता है, अपने स्वास्थ्य और परिजनों की इच्छाओं की कितनी उपेक्षा करनी पड़ती है, यह संगठन के काम में लगे

हुए लोग ही जानते हैं। रामनारायण जी ने अपने बलबूते पर 'नवोदित साहित्य परिषद' का गठन कर सैकड़ों युवा कवि और लेखकों को इससे जोड़ा।

उनकी इस क्षमता को पहचान कर उन्हें 'अखिल भारतीय साहित्य परिषद' के राष्ट्रीय महामंत्री का दायित्व दिया गया। राष्ट्रधर्म पत्रिका के काम के साथ सामंजस्य बैठाते हुए उन्होंने इसके लिए भी बहुत समय खर्च किया। 'संस्कार भारती' के हर कार्यक्रम में भी वे सक्रिय रहते थे। संगठन और साहित्य ही नहीं, बल्कि अनेक अन्य सामाजिक सरोकारों से भी वे जुड़े हुए थे। साल में चार–पांच बार तो वे रक्तदान करते ही थे। किसी भी मित्र–परिचित को रक्त की आवश्यकता हुई, तो वे सबसे पहले स्वयं ही अस्पताल जा पहुंचते थे। बहुत वर्ष पूर्व रेल में यात्रा करते समय जहरखुरानी के एक मामले में जब डिब्बे के सब यात्री गवाही देने से हिचक रहे थे, तब उन्होंने आगे बढ़कर अपना नाम लिखाया। इस कारण उन्हें छुट्टी लेकर कई बार झांसी जाना पड़ा पर इसे सामाजिक दायित्व समझ कर वे निभाते रहे।

लगभग नौ वर्ष तक एक ही कमरे में साथ–साथ बैठने के कारण बातें और यादें तो बहुत सी हैं। सबको लिखना न संभव है और न ही उचित। सहकर्मी और समवयस्क होने के कारण मैं भी जब किसी शारी. रिक या मानसिक उलझन में होता था, तो उनसे ही अपनी बात कहता था। वे यथासंभव उसका निदान भी करते थे। कैंसर जैसी बीमारी के बारे में समय से पता नहीं लगता और जब पता लगता है, तो बात प्रायः हाथ से निकल चुकी होती है। उनके साथ भी ऐसा ही हुआ। पिछली बार लखनऊ प्रवास में उनके घर भी गया था। वे बिस्तर पर थे। तन ढीला था पर मन बिल्कुल ठीक। इसके बाद दो बार हरिद्वार में मिला। मकर संक्रांति (15 जनवरी 2012) को उनके अंतिम दर्शन वहीं हुए। मैंने चलते समय पूछा कि मैं क्या सेवा करूं? उन्होंने भरे गले से कहा– बस, याद करते रहिये। सचमुच अब याद करने के अतिरिक्त बचा ही क्या है?

55–56 की आयु कुछ अधिक नहीं होती पर पारिवारिक दायित्वों को अधूरा छोड़कर वे असमय ही चले गये। उनके संगठन कौशल का लाभ अभी राष्ट्रधर्म, साहित्य परिषद और हिन्दी जगत को उठाना था पर विधि का विधान कौन टाल सका है? 28 जनवरी को वसंत पंचमी थी। मां सरस्वती के पुजारी रामनारायण जी को शायद इसी दिन की प्रतीक्षा थी। उन्होंने मां शारदा की मौन अभ्यर्थना की और फिर अगले ही दिन चले गये। अब हर वसंत पंचमी पर उनकी याद आएगी। दिल के किसी कोने में दर्द होगा, जिसे झेलना ही नियति है।

न हाथ थाम सके, न पकड़ सके दामन
बड़े करीब से उठ कर चला गया कोई।।

लखनऊ में मेरे जो भी मित्र हैं, पर्यटक जी उनमें सबसे अभिन्न थे। उनके जाने से जो रिक्तता निर्माण हुई है, उसका भरना असंभव है।

भाई रामनारायण जी, आप जहां भी हों, मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

(लेखक – 'राष्ट्रधर्म' मासिक के पूर्व सहायक सम्पादक हैं) ■

संघ ने दी दिवंगत पत्रकारों को श्रृद्धांजलि

नागपुर। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ द्वारा आयोजित तीन दिवसीय अखिल भारतीय प्रतिनिधी सभा नागपुर स्थित आरएसएस मुख्यालय में सम्पन्न हुई। इस सभा में दिवंगत कई अन्य प्रतिष्ठित लोगों के साथ–साथ पत्रकारिता जगत से जुड़े लोगों को भी श्रृद्धांजलि अर्पित किया गया, जिन्होंने अपने–अपने क्षेत्र में सफलता हासिल करते हुए समाज को एक दिशा प्रदान की।

मार्च 16 से 18 के बीच हुए इस सभा में पत्रकारिता जगत के जिन दिवंगतों को श्रृद्धांजलि अर्पित की गई उनमें आगरा के श्री सत्यनारायण जी गोयल (अमर उजाला व हिन्दुस्थान समाचार में कई वर्षों तक फोटोग्राफर रहे),कपूरथला के वरिष्ठ पत्रकार श्री मदनलाल बिरमानी, मुम्बई निवासी प्रखर चिंतक और अपनी लेखनी से सबको प्रभावित करने वाले डा. अरविंद गोडबोले, राष्ट्रधर्म के सह–संपादक और अखिल भारतीय साहित्य परिषद के महामंत्री श्री रामनारायण जी त्रिपाठी 'पर्यटक', प्रख्यात लेखिका व ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्रीमती इंदिरा गोस्वामी एवं प्रथम महिला फोटो पत्रकार व पद्म विभूषण से सम्मानित होमाई व्यारावाला रहीं। यह सभी प्रतिष्ठित लोग अपने–अपने कार्यक्षेत्र में एक मिशाल के रूप में आजीवन लोगों के बीच स्मरणीय रहेंगे।

बिहार में प्रेस आज़ाद नहीं –काटजू

भारतीय प्रेस परिषद (पीसीआई) के अध्यक्ष और सेवानिवृत्त न्यायमूर्ति मार्कण्डेय काटजू ने बिहार में मीडिया की आजादी पर अंकुश संबंधी जो वक्तव्य दिया है उसने एक नई बहस को जन्म दिया है। काटजू के बयान के बाद विपक्षी दलों ने सरकार पर हमला कर दिया है। प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर नीतीश सरकार की भूमिका पर काटजू ने कहा कि बिहार में प्रेस आजाद नहीं है और बिहार में पत्रकारों को स्वतंत्र रूप से समाचार लिखने पर सरकार उन्हें परेशान करती है जबकि पत्रकारों का स्वतंत्र रूप से खबर लिखना उनका संवैधानिक अधिकार है।

काटजू ने कहा कि यदि कोई पत्रकार सरकार या सरकारी अधिकारी के खिलाफ लिख देता है तो उसे परेशान किया जाता है। उन्होंने कहा कि सभी आरोपों की जांच होगी। सरकार के निर्देश पर समाचार पत्र मालिकों के दबाव में पत्रकारों के तबादले, प्रताड़ना के आरोप भी शामिल है। बिहार में पत्रकारों पर हुए हमलों की भी विस्तार से जांच की जाएगी।

इसका जवाब देते हुए बिहार में सत्तारुढ़ जदयू के राष्ट्रीय प्रवक्ता शिवानंद तिवारी ने एक प्रेस कांफ्रेंस में संवाददाताओं से कहा, "प्रेस परिषद के अध्यक्ष ने यह बयान अखबारों की सुर्खियों में बने रहने के लिए दिया है। सरकार द्वारा बिहार में मीडिया पर अंकुश लगाने की बात गलत है। तिवारी ने मीडियाकर्मियों से पलटकर सवाल किया, "क्या आपको लगता है कि बिहार में मीडिया पर सरकार का कोई दबाव है।" काटजू का बयान अखबारों में प्रमुखता से छपा है, यदि नीतीश सरकार का दबदबा रहता तो यह खबर नहीं छपती।

जदयू सांसद और राष्ट्रीय प्रवक्ता शिवानंद तिवारी ने कहा, "बिहार में जब प्रेस विधेयक आया था तब प्रेस की स्वतंत्रता के लिए नीतीश और मैं जेल भी गये थे।" बिहार में प्रेस की स्वतंत्रता को लेकर जब उनसे पीसीआई की जांच टीम भेजे जाने का प्रश्न किया किया तो जवाब में तिवारी ने कहा कि पीसीआई के अध्यक्ष के रूप में उनके काटजू के पास कुर्सी है। वह जब चाहे जहां चाहे अपनी टीम भेज सकते हैं जबकि काटजू के इस बयान पर नीतीश ने अपनी कोई प्रतिक्रिया नहीं दी।

सच्चाई की कीमत तो चुकानी ही पड़ती है

आकाश राय

पत्रकारों को सच सामने लाने के लिए जोखिम उठाने पड़ते हैं और इस सच की कीमत भी चुकानी पड़ती है। यह सच और झूठ की मुठभेड़ है जो अनादिकाल से चली आ रही है तथा अपने–अपने मोर्चे पर बोलकर अथवा लिखकर हर दौर में नारद से लेकर गांधी तक महान लोगों ने समाज में बदलाव की लहर लाने का काम किया। इस काम में साहित्यकारों की भूमिका भी सराहनीय रही है, जिन्होंने कलम के सिपाही के तौर पर निरन्तर अपनी लेखनी की कीमत चुकाते हुए नई पीढ़ी के लिए मार्ग प्रशस्तिकरण का काम करते रहे।

आज के समय में भी कलम के इन सिपाहियों यानि की देश के चौथे स्तम्भधारी मीडिया वालों पर देश और समाज की दशा और दिशा के बारे में विचार कर उसके लिए बेहतर विकल्प तलाशने का काम है। ऐसे में पत्रकार अपनी ईमानदारी और कलम के जोर पर ही समाज के प्रति अपनी संवेदनाओं को अक्षरों के रुप में उकेरने का काम करता है। एक पत्रकार राष्ट्र की संस्कृति और समाज बनाता है और इतिहास व समय के पैमाने को बदलता जाता है। ऐसे में ज्ञान की वंश परम्परा में साहित्यकार और पत्रकार को दो जुड़वां भाईयों की संज्ञा देना गलत ना होगा। जहां साहित्यकार शाश्वत की खोज करता है वहीं पत्रकार वर्तमान का अन्वेषण करता है। सूचना और प्रौद्योगिकी के युग से पहले भी वह स्वतंत्रता सेनानियों की जय बोलता था और आज भी वह पिछड़े और वंचितों के साथ ही जीता है। यही कारण है कि शब्द कभी मरता नहीं है, वह स्वयं ही अपना रास्ता बनाता है।

उपनिवेशवाद से लेकर आज पूंजीवाद तक तानाशाही और लोकतंत्र में सच्ची कलम विपक्ष की आवाज बनकर ही चली है। दुनिया भर में दूसरे विश्व युद्ध के बाद जो क्रांतिकारी बदलाव आये हैं, उसमें आम जनता की आवाज को आगे बढ़ाने का काम साहित्यकारों तथा पत्रकारों ने ही किया है। वैसे मूल तौर पर पत्रकारिता का विकास तो उस युग से माना जायेगा जब यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बाद छापाखाने की परिकल्पना सामने आई। भारत के संदर्भ में देखें तो पत्रकारिता का उदय अंग्रेजों के भारत आने से पूर्व मुगलकाल में ही हो गया था। पहले प्रचार–प्रसार सीमित था लेकिन जैसे–जैसे तकनीक का और कागज का आविष्कार हुआ हमारे लोक जीवन में शब्द और वाणी के प्रभाव सभी दिशाओं में फैलने लगे। साहित्य की इन्हीं सीमाओं को तोड़ने का काम आज पत्रकारिता कर रही है तथा सूचना और प्रौद्योगिकी की इस 21वीं सदी में पत्रकारिता ने पारदर्शिता के नए रास्ते भी खोल दिए हैं।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के रुप में प्रचलित 1857 की क्रांति में इस सूचना और समाचार की ताकत ने जबर्दस्त काम किया है। आज प्रिंट और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया ने देश और समाज में जो अग्रणी हस्तक्षेप और सवाल खड़े किये हैं, उसी का परिणाम है कि मीडिया अब विधायिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के बाद चौथे स्तम्भ अर्थात् खबरपालिका के रूप में स्थापित हो गया है। स्थितियों में बदलाव इस तरह से आया है कि पहले जहां सूचना का खुलासा करने वालों को भेदिया कहकर मार दिया जाता था, जहर का प्याला पिला दिया जाता था, हाथी के पांवो से कुचल दिया जाता था या फिर तोप के मुँह पर बांधकर उड़ा दिया जाता था। वही काम आज लोकतंत्र में राजनैतिक और आर्थिक गिरोहों तथा माफियाओं के द्वारा किया जाता है यानि कि उनके हितों के लिए बोलने और लिखने वाले को रास्ते का काँटा समझकर साफ किया जाता है।

समझने की बात यह है कि आज जब राजनीति का अपराधीकरण हो गया है, जातिवाद और सम्प्रदायवाद जिस तरह सत्ता–व्यवस्था में घुस गया है तथा आर्थिक शक्तियां जिस तरह समानान्तर सरकार जैसी संगठित बन गई है तब से सच की खोज करने वाला पत्रकार इन समाज विरोधी ताकतों के निशाने पर आ गया है। आजादी के बाद और लोकतंत्र के विकास में जब पत्रकारिता और मीडिया एक सूचना उद्योग का रूप ले चुके है तब से शब्द और सूचना की सत्यता ही सबसे अधिक हिंसा और अपराध का शिकार हो रही है। आज भारत में ही विभिन्न भाषाओं की कोई 80 हजार पत्र–पत्रिकाएं निकल रही हैं और करीब 700 से अधिक टीवी चैनल रात–दिन चल रहे है। ऐसे में राजनैतिक और आर्थिक ताकतों की सारी कवायद मीडिया को अपने नियंत्रण में रखने की हो रही है। यह शक्तियां साम, दाम, दण्ड व भेद से मीडिया पर अपना आधिपत्य जमाने में लगी हैं। इस रास्ते में बाधा बन रहे पत्रकारों और लेखकों को अपनी राह का रोड़ा समझकर मारती–डराती रहती है।

शब्द और सत्य पर आक्रमण की यह कहानी 1990 के भूमंडलीकरण और खुले बाजार की अर्थव्यवस्था में बहुत अधिक सक्रिय हो गई है। तानाशाही और अधिनायकवादी शासन व्यवस्थाओं में यह हमले अधिक है लेकिन भारत जैसे उदार लोकतंत्र में पत्रकार और मीडिया पर सबसे अधिक कातिलाना हमले राजनीति और आर्थिक जगत से जुड़े घराने ही करा रहे हैं। जहां–जहां मीडिया का प्रभाव समाज में बढ़ रहा है, वहां–वहां भेद खोलने वाले और खोजी पत्रकारिता के नायकों पर हमले अधिक हो रहे हैं। संक्षिप्त में एक मीडियाकर्मी और पत्रकार की हत्या समय और समाज के सत्य को दबाने के लिए ही है। पंजाब केसरी के लाला जगत नारायण तथा रमेशचंद्र की हत्या आतंक में की गई तो लेखिका तसलीमा नसरीन को सच लिखने के लिए बांग्लादेश से निर्वासित होना पड़ा। इसी तरह 1975 के आपातकाल में मीडिया को भारी प्रतिबंध झेलने पड़े ताकि वह सरकार की गलत नीतियों पर जनता की बातों को आगे और प्रचारित–प्रसारित न करें।

यह सब प्रतिरोध और असहमति ही कलम के सिपाही को हिंसा का शिकार बनाती है और हरिशंकर परसाई को भी साम्प्रदायिकता के गुंडों से पिटवाती है। अभी आर्थिक राजधानी मुम्बई में समाचार–पत्र मीड–डे के पत्रकार ज्योतिर्मय डे की हत्या और पिछले दिनों पाकिस्तान के एक पत्रकार सलीम शहजात की मौत, इसी क्रम का एक उदाहरण है। इसी प्रकार आए दिन हत्या और हमलों की खबरें इस बात की याद दिलाती है कि हर लेखक और पत्रकार को सच लिखने की कीमत चुकानी ही पड़ती है, जो भूत से लेकर भविष्य में भी पूर्णत सत्य है। ऐसे में कलम के सिपाहियों को जोखिम तो उठाने ही होंगे, तभी तो वह तथ्यों की परख और सच के अन्वेषण को सही दिशा दे सकेगा। ऐसे में वह समय दूर नहीं जब कमल के सिपाही सही मायनों में लोकतंत्र के सच्चे रक्षक कहलायेंगे। यह सत्य है कि शायर, सिंह और सपूत सदैव लीक से हटकर अपनी उपस्थिति को दर्ज कराते हैं। कलम का इतिहास भी वही लिखते हैं जो शहीद हो जाते हैं पर बिकते नहीं। ■

1. ऐडेप्ट– किसी लेखक द्वारा लिखी कहानी या उपन्यास को फिल्मी रूप देना।

2. एम– यह मुद्राक्षर की चौड़ाई नापने का माध्यम है। एक इंच में छह 'एम' होते है। मुद्राक्षर की ऊंचाई प्वाइंट से नापी जाती है। एक इंच में 72 प्वाइंट होते हैं। इसलिए एक 'एम' 12 प्वाइंट के बराबर होता है। 'पाइका' नाम का टाइप एक एम (12 प्वाइंट) चौड़ा और एक एम ऊंचा होता है।

3. एन– यह भी मुद्राक्षर की चौड़ाई नापने का एक पैमाना है। यह एम का आधा होता है अर्थात एक एम में दो एन (6 प्वाइंट) होते हैं।

4. एडिटोरियल– सम्पादकीय। समाचार पत्र का यह सबसे प्रमुख स्तम्भ होता है। वास्तव में सम्पादकीय समाचार पत्र का विचार प्रधान होता है।

5. ए बी सी– अमेरिकन ब्राडकास्टिंग कम्पनी के लिए प्रयुक्त होता है।